प्र क र ण - ४

डा. वर्मा के नाटकों में ऐतिहासिक तथ्यों का निर्वाह

" किसी भी ऐतिहासिक नाटक के लिए केवल कल्पना का आश्रय ही पर्याप्त नहीं होता । इतिहास के पृष्ठों की नींव पर ही ऐतिहासिक नाटक का भव्य प्रासाद खड़ा हो सकता है । नाटक जीवन की प्रभाव पूर्ण कृति है, चाहे वह जीवन का वर्तमान रूप हो अथवा अतीत के स्वर्णिम पृष्ठों से लिया गया हो। यदि गणित के संदर्भ में कहा जाय तो मैं पचहत्तर प्रतिशत इतिहास व पच्चीस प्रतिशत कल्पना का प्रयोग करता हूं ।"

डा. वर्मा से व्यक्तिगत रूप से प्राप्त "

४.१ बौद्ध कालीन नाटक

" कला वीर कृपाण "

" कला और कृपाण "

कथावस्तु :-

प्रस्तुत नाटक के केन्द्र बिन्दु महाराज उदयन हैं । उदयन आखेट क्रीडा के निमित्त अपने सेनापति विजयसेन के साथ विन्ध्याटवी के वन में जाते हैं । उनका मार्ग-दर्शन उनके विदूषक कैरक व संभूढ़ करते हैं । उदयन की आखेट क्रीडा में ही मंजूघोषा नामक किरातकन्या की पालित पक्षिणी सारिका का वध उदयन के शब्दवेधी बाण से हो जाता है । इसी समय मंजूघोषा के समक्ष आमात्य यौगंधरायण और आखेटक (सम्राट उदयन छद्मवेश में थे) आते हैं । मंजूघोषा आखेटक को देखकर क्रुद्ध होकर आमात्य से न्याय की याचना करती है । वह उदयन के वार्तालाप व व्यवहार से प्रभावित होती है । अंत में उसे न्याय के लिए कौशाम्बी बुलाया जाता है ।

द्वितीय अंक का आरम्भ कौशाम्बी के राजप्रसाद से होता है । वासवदत्ता उदयन की प्रतीक्षा में है । उदयन आते हैं तथा स्वयं समस्त घटना का वर्णन वासवदत्ता से कर उनसे निर्णय की याचना करते हैं । उदयन के वार्तालाप से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे किरात कन्या की ओर आकृष्ट हैं । मंजूघोषा के आगमन पर उदयन स्वयं आड़ में हो जाते हैं, तथा वासवदत्ता अभियोग सुनती है । परन्तु उसके निर्णय देने से पूर्व ही वे उसके समक्ष अकस्मात् उपस्थित होते हैं । उदयन का साक्षात्कार कर मंजूघोषा वास्तविकता से अवगत हो अपने कटूक्तियों के लिए क्षमा याचना करती है । उदयन निर्णय में मंजूघोषा को वासवदत्ता की प्रमुख सहचरी के रूप में नियुक्त कर देते हैं । उदयन वीणा वादन को तत्पर होते हैं, इसी समय महाराज दर्शक का संदेश लेकर दूत का प्रवेश होता है ।

तृतीय अंक की कथा का आधार बौद्ध साहित्य है। उदयन कनकावती पर आक्रमण करने की तैयारी अपनी सेना का निरीक्षण करने के लिए प्रस्तुत है, उसी समय तथागत के आगमन की सूचना मिलती है। उदयन क्रुद्ध हो जाते हैं। मंजूघोषा तथागत को पुष्पहार अर्पित करने को प्रस्तुत होती है, उसी समय उदयन तथागत पर अपना अचूक वेधी बाण संधान करते हैं जो लक्ष्य को न लग कर मंजूघोषा को लगता है। क्रुद्ध जन-गण उदयन के प्रासाद के पर आक्रमण करना चाहते हैं, किन्तु बुद्ध जनता को शान्ति का उपदेश देते हैं तथा उदयन को भी क्षमा प्रदान करते हैं। इस चमत्कारी घटना का प्रभाव उदयन का धर्म परिवर्तन है यही धर्म परिवर्तन नाटक के कार्य व्यापार की सिद्धि या फलागम है।

कथावस्तु का निर्वाह :-

प्रस्तुत नाटक में प्रथम अंक में कार्यावस्था नामक तत्व का विस्तार मंजूघोषा के कौशाम्बी निमंत्रण तक है। यहां यह स्पष्ट हो जाता है कि मंजूघोषा व उदयन परस्पर आकृष्ट हैं। यही बीज नामक अर्थ प्रकृति भी नियोजित प्रतीत होता है। सम्राट उदयन का मंजूघोषा का आकर्षण ही बीज है जो द्वितीय अंक में बिन्दु बनकर विस्तार पाता है, जब उदयन मंजूघोषा को वासवदत्ता की प्रमुख सहचरी नियुक्त करते हैं।

द्वितीय अंक में महाराज दधि के सन्देश के फलस्वरूप उदयन को कला की साधना के स्थान पर कृपाण के प्रयोग के लिए तत्पर होना पड़ता है। यहीं पर उदयन के चरित्र में कला व कृपाण विधा की संतुलित योजना स्थापित की गई है। यही कारण है कि प्रस्तुत नाटक का शीर्षक भी कला और कृपाण है। मंजूघोषा का राजभवन में प्रवेश कराकर नाटककार ने उसका संबंध नाटक के प्रधान प्रसंग - - - - - - - - - - उदयन का हृदय परिवर्तन से स्थापित किया है[1]। इस अवान्तर प्रसंग को प्रधान प्रसंग से संबद्ध करने

---

१. जयशंकर ने भी अपने नाटक अजातशत्रु में उदयन के धर्म परिवर्तन व गौतम बुद्ध का अनुयायी होने का चित्रण किया है, परन्तु वहां उसके धर्म परिवर्तन का मूलकारण पद्मावती का

के कारण बिन्दु अर्थ प्रकृति का निर्वाह हुआ है ।

प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु में संधियों को यत्किंचित मात्रा में देखा जा सकता है । प्रथम अंक में अनेक रसों वीर ,करुण तथा शृंगार रस की सुन्दर आयोजना है, तथा प्रारम्भ तथा बीज को संवंचित करने के कारण एवं अनेक रसों की योजना होने के कारण प्रथम अंक में मुख संधि है । द्वितीय अंक में मंजूघोषा व उदयन का वार्तालाप कभी प्रकट तथा कभी अप्रकट होने के कारण बीज कभी लक्षित तथा अलक्षित होने से प्रति मुख संधि का निर्वाह हुआ है । तथागत की ओर संधानित बाण मंजूघोषा को लगना नाटक की चरमसीमा है । इस बिन्दु के उपरान्त कथावस्तु नियति की ओर मुड़कर उदयन के हृदय परिवर्तन में पर्यवसित होती है ।

ऐतिहासिकता :--

किसी ऐतिहासिक नाटक में केवल कल्पना का आश्रय ही पर्याप्त नहीं होता । इतिहास के पृष्ठों की नींव पर ही ऐतिहासिक नाटक का भव्य प्रासाद खड़ा हो सकता है । नाटक जीवन की प्रभावपूर्ण कृति है । चाहे व जीवन का वर्तमान रूप हो, अथवा अतीत के स्वर्णिम पृष्ठों से लिया गया हो ,परन्तु उसमें कला का प्रकाश हो प्रस्तुत नाटक में मनोवैज्ञानिक शृंखला है जिसे ऐतिहासिकता का आवरण दिया गया है ।

वायु पुराण के अनुसार उदयन पाण्डव वंशी महाराज परीक्षित की बाईसवीं पीढ़ी में पैदा हुए थे । कौशाम्बी नगर उस समय अपने वैभव के चरमोत्कर्ष पर था ।जातक कथाओं, कथासरित्सागर, ललित विस्तार, मेघदूत आदि ग्रन्थों में कौशाम्बी को एक सुंदर व ऐश्वर्यशाली नगर कहा गया है । महाराज उदयन की इस राजधानी का उल्लेख एक समृद्धिशाली नगर के रूप में " दीघ निकाय " तथा सुत्त निपात " (बौद्ध ग्रन्थों) में मिलता है ।

गौतम बुद्ध के समय में भारत में जनपद स्थापित थे । जिनमें से मगध कौशल व अवन्ती की अधिक शक्ति शाली थे । उदयन ने मगध व अवन्ती से वैवाहिक सन्धि की थी । वे एक उद्भट योद्धा के साथ ही वीणा-वादन में भी अद्वितीय थे । उनका मंत्री यौगन्धरायण कुशल राजनीतिज्ञ था तथा सेनापति चण्डवान प्रचण्ड वीर था ।

महाराज उदयन की चार रानियों का उल्लेख मिलता है । उनमें से एक अवंती की राजकुमारी वासवदत्ता थी । दूसरी मगध की राजकुमारी पद्मावती, जिसका उदयन से विवाह एक राजनैतिक आवश्यकता थी । पद्मावती नगर के श्रेष्ठि गोपाल की पालित कन्या सामावती तथा मांगधिया उदयन की अन्य दो रानियाँ थीं । +

वायु पुराण की उपरोक्त कथा पर ही आधारित भास का स्वप्न वासवदत्तम है । इस नाटक में वासवदत्ता से उसका गांधर्व विवाह तथा पद्मावती से उसका विवाह राजनैतिक आवश्यकता के कारण होता है ।

उदयन के अस्तित्व की साक्षी इतिहास देता है । प्रसिद्ध इतिहासकार डा. आर.सी.मजूमदार लिखते हैं " उदयन की अनेक रानियां कही जाती है, जिनमें एक कुरु के ब्राह्मण की कन्या थी तथा दूसरी मगध के राजा दर्शक की बहन थीं । १

उदयन प्रारंभ से बौद्ध धर्म के विरोधी थे बुद्ध दो बार कौशाम्बी आये थे। प्रथम

+ स्वप्न वासवदत्तम के प्रणेता भास ने उदयन की केवल दो रानियों का उल्लेख है, वासवदत्ता तथा पद्मावती । जयशंकर प्रसाद ने पद्मावती व वासवदत्ता के अतिरिक्त मांगधी का भी उल्लेख किया है । परन्तु मांगधी के विषय में उन्होंने स्पष्ट स्वीकार किया है कि वह उनकी कल्पनाजनित पात्रा है ।

१. देखिए - परिशिष्ट - १ - उद्धरण - ३४

भास ने मगध के राजा का नाम दर्शक ही दिया है । परन्तु प्रसाद ने अजातशत्रु । इतिहासकारों को इस विषय में संदेह है कि दर्शक का ही नाम बाद में अजातशत्रु पड़ा था दर्शक व अजातशत्रु दो भिन्न भिन्न व्यक्ति थे ।

बार उदयन के सिंहासना होने के दो वर्ष पश्चात तथा दूसरी बार ६२१ पूर्वसा में जब उदयन बौद्ध धर्म में दीक्षित हो चुके थे । बौद्ध जातक कथाएं इस तथ्य का समर्थन करती है कि राज्यारोहण के आस-पास उसका प्रथम विवाह हुआ था । इसके पश्चात उसका द्वितीय विवाह सामावती से हुआ था । परन्तु उदयन ने उसके बौद्ध धर्म के आसक्ति का कभी विरोध नहीं किया ।

उदयन के वीणावादन की कुशलता एवं प्रेम का समर्थन भी लोक एवं बौद्ध साहित्य से होता है । स्वप्नवासवदत्तम इस तथ्य की पुष्टि करता है कि उनकी प्रिय रानी वासवदत्ता ने उनकी वीणावादन की कुशलता पर मुग्ध होकर उनके साथ गांधर्व विवाह किया था ।

> अस्यवजित: पूर्व तावत सुते लालितौ
> वृद्धनपकृता कन्या मु यौमया न वरर्थिता ।
> निगनपपि च श्रुत्वा तस्यास्तथैव मयि स्वता
> ननु यदुचिता वत्सान प्राप्तु नृपौव हिकारणम ।। [१]

उदयन के धर्म परिवर्तन के विषय में दो कथाएं है । तिब्बत के बौद्ध साहित्य के अनुसार ई पू. ६२१ में जब तथा गत कौशाम्बी आये थे तब उदयन कनकावती पर आक्रमण करने की तैयारी कर रहे थे । इसी वीरत्व व्यंजक वातावरण में गौतम का अहिंसा का

---

१. स्वप्नवासवदत्तम " भास "

उदयन के वीणावादन से संबंधित अनेक कथाओं का विवरण तत्कालीन धर्म ग्रन्थों में मिलता है । जयशंकरप्रसाद ने भी सपत्नी द्वेष की ईर्ष्या से प्रपीड़ित मागंधी का चित्रण किया है जो पद्मावती के प्रभाव को कम करने के लिए उदयन की वीणा में सांप का बच्चा छिपा देती है ।

उपदेश उदयन को अरुचिकर प्रतीत हुआ । अत: वे तथागत का वध करने को तैयार हुए । इस शब्दवेधी बाण कला संधान में तो वे निपुण ही थे । अत: उन्होंने इस कला का प्रयोग तथागत पर किया जो उनको नहीं लगा । बल्कि उस बाण से अहिंसामूलक धर्मोपदेश की ध्वनि निकली । रॉक हिल ने इस बाण की ध्वनि को इस प्रकार अनुवादित किया है --

"From malice is misery brought forth,
He who gives upto sacrifice and quarrels,
Hereafter will experience the misery of Hell,
Put away misery and quarrelling." 1

इतिहास से भी इस घटना का साक्ष्य मिलता है । शान्ति के दूत गौतम बुद्ध के असमय उपस्थित होने पर उदयन ने कहा ऐसे शान्ति अथवा दुर्भाग्य के दूतों को मृत्यु की क्रोड़ में डाल देना चाहिए क्योंकि गौतम उसके आक्रमण को रोक सकते थे । अत: उदयन ने एक तीव्र बाण उनकी ओर संधानित किया । २

पालि कथाओं के अनुसार उदयन को बौद्ध धर्म में दीक्षित का श्रेय पिण्डोल भारद्वाज को है । एक बार गौतम भ्रमण को गये हुए थे । उदयन की रानियां रात्रि में उन्हें अकेला सोता छोड कर चली गईं । उदयन ने क्रुद्ध होकर गौतम के प्रचारक पिण्डोल के शरीर में चीटीयों का कुचा बंधवा दिया । परन्तु पिण्डोल इससे अप्रभावित रहे । तत्पश्चात उदयन अत्यन्त प्रभावित हुए तथा उन्हें पश्चाताप हुआ तथा उन्होंने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया । उदयन के धर्म परिवर्तन विषयक एक कथा यह भी है कि रानी सामावती के प्रसाद में अग्नि काण्ड होने से रानी की मृत्यु हो गई जिससे संतप्त हो उदयन ने बौद्ध धर्म

---

१ Rock Hill, the Life of the Buddha, p.74.

२. देखिए - परिशिष्ट - १ - उद्धरण - ३५

स्वीकार कर लिया । + वर्मा जी ने प्रथम घटना को ही सत्य के अधिक निकट जानकर ग्रहण किया है । परन्तु धर्म परिवर्तन की इस कथा को उन्होंने मनोविज्ञान से सम्बन्ध कर दिया है ।

नाटक में काल्पनिक तत्व :--

कथा सरित्सागर तथा स्वप्नवासवदत्तम के अनुसार उदयन सौन्दर्य प्रेमी था । इस आधार पर द्वितीय अंक की कथावस्तु का निर्माण किया गया है । मंजुघोषा एक काल्पनिक पात्रा है । सम्भवत: उससे उदयन को प्रेम हो गया था । अत: उसे उन्होंने प्रमुख परिचारिका के रूप में अन्त:पुर में स्थान दिया था । उदयन का सम्मानित ब्राह्मण गौतम बुद्ध को न समझ कर उनकी प्रियतम परिचारिका को लगने के कारण उदयन को बहुत क्षोभ हुआ । एवं उनमें विरक्ति जागृत हुई । इसी कारण उनके जीव दया के उपदेशों से प्रभावित होकर उन्होंने बौद्ध धर्म की दीक्षा ली । प्रभाव समष्टि के लिए नाटककार ने यह योजना की है ।

यहाँ डा. वर्मा ने उदयन को यद्यपि एक अभूतपूर्व में प्रस्तुत किया है परन्तु मंजुघोषा के साथ उनके सम्बन्ध स्पष्ट न होकर उदयन के चरित्र का उदात्तीकरण न हो कर उदयन के चरित्र का उदात्तीकरण न हो सका है । अंत:पुर की परिचारिका के रूप में उसकी नियुक्ति यद्यपि उसके प्रति उदयन के आकर्षण को स्पष्ट करती है परन्तु उस प्रेम या प्रणय की परिणति विवाह में न होने के कारण मंजुघोषा के प्रति उदयन का प्रेम उदयन के चरित्र में एक कलंक का सा प्रतीत होता है ।

+ भास ने वासवदत्ता के अग्नि काण्ड का चित्रण किया है तथा जयशंकरप्रसाद ने मागंधी के अग्निकाण्ड का , परन्तु इनमें किसी भी नाटककार ने उदयन के बौद्ध धर्म स्वीकार करने का चित्रण नहीं किया है ।

भाषा :--

वर्मा जी के अन्य ऐतिहासिक नाटकों के समान प्रस्तुत नाटक की भाषा में धारा प्रवाह व समरसता है। किरात कन्या मंजूघोषा के द्वारा भी उसी भाषा का प्रयोग हुआ है। जैसा राजकीय वर्ग की वाक्पटुता व सामाजिकता के द्वारा इसका कारण स्पष्ट है। वर्मा जी, श्री जयशंकरप्रसाद के समान अपने समस्त एकांकी व नाटकों में सभी पात्रों को एक सी भाषा बोलने का अवसर देते हैं। जिससे ऐतिहासिक वातावरण की मर्यादा सुरक्षित रहती है। वर्मा जी के सामाजिक एकांकी व नाटक इसके अपवाद हैं। प्रस्तुत नाटक में श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र के "वितस्ता की लहरें" नामक नाटक के समान भाषा में यथा अवसर ओजपूर्ण एवं कोमल शब्दावलियों की आयोजना है। जहां भावों में आवेग है वहां भाषा अत्यन्त सरल - व्यावहारिक एवं सुबोध है।

" मैं किसी प्रकार का न्याय नहीं चाहती। आपके चरणों पर समस्त सारिकाएं निछावर कर सकती हूं। ओह! न जाने मैंने कितने अपशब्दों का प्रयोग किया, देवी मैं आपसे क्षमा की भिक्षा मांगती हूं। महाराज से मैंने न जाने कितने अपशब्द कहे होंगे। मेरी सारिका का रक्त आंखों में क्रोध बनकर समा गया था।

जहां वातावरण गंभीर है, वहां भाषा भी गंभीर हो गई है। मंजूघोषा के बाण से हत होने पर तथागत के शब्दों में कुछ ऐसी गंभीरता या मन्थरता आ गई है।

" मंजूघोषे! तू पृथ्वी पर शयन कर पुण्य उत्पन्न कर (उदयन से) आयुष्मन, तुम महाप्रज्ञ हो, नाना प्रज्ञ हो, भास्वर प्रज्ञ हो। सुख, चित्त की एकाग्रता स्पर्श वेदना छन्द, अधिमोक्ष, ये तुमको विदित होकर उत्पन्न होते हैं, विदित होकर अस्त होते हैं। जिस प्रकार मनुष्य पर तुम्हारा बाण-प्रेरणा में आसन लेता है, भावना से स्थिर होता है और फल प्राप्ति पर अस्त होता है। "

प्रस्तुत नाटक की भाषा में काव्यात्मकता का पुट है। परन्तु स्वाभाविकता अपने मूल रूप में सुरक्षित है। शेक्सपियर ने "मैकबेथ " हैमलेट तथा " ओथेलो " आदि नाटकों के संवादों में काव्यात्मक भाषा का प्रयोग किया है। वस्तुत: वर्मा जी ने अपनी तीव्र एवं गहन अनुभूति को सरलता से प्रेषणीय बनाने के लिए ही काव्यात्मक संवादों की योजना की है। उससे अनुभूति तो सरलता से व्यंजित हो गई है। साथ ही अभिव्यक्ति में भी अस्पष्टता परिलक्षित नहीं होती।

कथोपकथन :--

प्रस्तुत नाटक के सभी पात्र एक ही वातावरण में पुष्पित व पल्लवित हो रहे हैं। अत: उनके संवादों व कथोपकथनों में एक रूपता व समरसता है। फिर भी प्रत्येक पात्र के अलग-अलग संवाद से उसके व्यक्तित्व पर प्रकाश पड़ता है। साथ ही उसके व्यक्तित्व का स्पष्ट बोध होता है। मंजुघोषा के संक्षिप्त संवादों में उसके अंत:करण की करुणा प्रकाशित होती है।

" उस सारिका को नहीं जानते, जिसके फूल से प्राण में तुम्हारे बाण ने आग लगा दी है ? किस प्रकार एक क्षण में उसका अन्त हो गया। उसने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था ? प्रात:, सांय कितने मधुर स्वर से गान करती थी। संगीत की सारी कला उसे कण्ठ में अमृत होकर बरसती थी।" [१]

उदयन के संवादों में यथावसर उसके धीरत्व एवं श्रृंगारिक प्रकृति का आभास होता है। आमात्य यौगंधरायण के वाक्यों में प्रखर गंभीरता है।

महाराज ! मैंने जान बूझ कर ऐसा किया। यदि ऐसा न करता, तो उसे

---

१. कला और कृपाण -- पृ. सं. ७

आपसे बातें करने का अवसर कैसे मिलता ।" १

शैलरक व अंशबुड के संवादों में पर्याप्त मनोरंजन है --

" तुम एक श्रगाल के आने से चौंक उठती हो ? श्रगाल (हंसकर) सम्भवत: वह भी तुम्हारी राजनीति में रुचि रखता है । आओ बैठो, शैलबुड । २

सभी पात्रों के कथोपकथन उनके चरित्र व व्यक्तित्व के अनुकूल है । रूमण्वान के संवादों से ही उसकी कठोरता व सेनापतित्व का आभास हो जाता है । मंजुघोषा के संवादों में एक वन बाला की सी भावुकता एवं वासवदत्ता व सामावती के संवादों में शासकीय मर्यादा प्रतिबिम्बित होती है ।

चरित्र-चित्रण :--

प्रस्तुत नाटक में पात्रों का चुनाव में नाटककार ने बड़ी कुशलता से काम लिया है । पात्रों के चुनाव में नाटककार की सतर्कता प्रशंसनीय है । उदयन की चार रानियों में - वासवदत्ता व सामावती को ही नाटक में स्थान मिला है । उदयन का चरित्र पूर्णरूपेण इतिहासानुमोदित है, वे कला व कृपाण के समान अधिकारी है । उनका चरित्र बौद्ध साहित्य व भास द्वारा रचित चरित्रों की अपेक्षा का आधार लिए हुए हैं । उनके व्यक्तित्व को सौन्दर्य गुण कला और शौर्य की प्रतिष्ठा समान रूप से हुई है । वे वीरोचित गुणों से समाहित होते हुए भी प्रणय व श्रृंगार प्रिय है । मंजूघोषा से मधुर विनोद उनका उत्कृष्ट प्रमाण है --

---

१. कला और कृपाण -- पृ सं. ३४

२. ,, ,, ,, ३

" मैं यह अभियोग ले जाऊंगा कि जिस प्रकार किसी वधिक के तीर से सारिका के प्राण नष्ट हो सकते हैं, उसी प्रकार किसी नारी की चितवन से किसी वाल्टिक के प्राण भी नष्ट हो सकते हैं। नारियों की दृष्टि पर भी प्रतिबन्ध होना चाहिए । [1]

इस दृष्टि से उदयन धीरोदात्त नायक न होकर धीर ललित नायक हैं। उदयन के चरित्र को उत्कर्ष देने के लिए लेखक ने कुछ मौलिक कल्पनाएं की हैं किन्तु इससे इतिहास की क्षति नहीं पहुंची है। उदयन का मंजुघोषा के प्रति आकर्षण उनका मंजुघोषा को सहचरी नियुक्त करना मंजुघोषा का तथागत को पुष्पहार अर्पित करना आदि नाटकार नाटककार की मौलिक कल्पनाएं हैं।

उदयन के अतिरिक्त वासवदत्ता, सामावती, यौगंधरायण तथा रुमण्वान एवं तथागत ऐतिहासिक पात्र हैं। इनके चरित्र के सफल उद्घाटन नाटककार ने किया है। ~~सेलरक्षक,--कूड~~ शेलरक, कंबूड तथा मंजुघोषा कल्पित पात्र हैं। परन्तु उनका चरित्र ऐतिहासिक रंग से आवृत है। शेलरक व कंबूड विदूषक का कार्य तो करते ही हैं तथा कथावस्तु के "बीज" को विस्तार भी देते हैं।

रस :--

"कला और कृपाण" में तीन रसों की योजना हुई है। वीर रस, शृंगार रस तथा करुण रस। प्रथम अंक के पूर्वार्द्ध में वीर रस तथा उत्तरार्द्ध में वीर रस एवं शृंगार रस, द्वितीय अंक के पूर्वार्द्ध में शृंगार रस तथा उत्तरार्द्ध में वीर रस की योजना हुई है। तृतीय अंक में करुण रस प्रवहमान है। नाटक की परिणति करुण रस में ही हुई है। अन्य रसों की अपेक्षा करुण रस का प्रभाव अधिक स्थायी होता है। शृंगार हास्य, वीर आदि रस करुण भवभूति ने " एको रस करुण" रस के ही सहायक सिद्ध

---

1. कला और कृपाण -- पृ. सं. 22

होते हैं । संभवतः इसी कारण भवभूति ने " एको रस करुण एव निमित्त भेदात्, कहा है । नाटक का पर्यवसान करुण रस में होने से दर्शकों तथा पाठकों पर स्थायी प्रभावोत्पादक है । वर्माजी के ऐतिहासिक नाटकों की यह सामान्य प्रकृति है कि वे शान्त रस या करुण में परिणति पाते हैं ।

उद्देश्य :--

प्रस्तुत नाटक का उद्देश्य विजय पर्व के उद्देश्य से सादृश्य रखती है । दोनों का उद्देश्य अहिंसा की हिंसा पर विजय दिखाना है । गौतम बुद्ध की अहिंसा आज भी भारत के कण कण में व्याप्त दिखाई देती है । पूज्य बापू ने इस युग में अहिंसा धर्म की सार्थकता पर आस्था व्यक्त की है । तथा पथभ्रष्ट मानव को सत्य का मार्ग दिखाया है ।इस दृष्टिकोण से ऐतिहासिक होते हुए भी प्रस्तुत नाटक वर्तमान का सन्देशवाहक है । प्रस्तुत नाटक दर्शकों पर अहिंसा का अमर संदेश देने में सफल है - मानव की पाशविक वृत्तियों से कहीं अधिक सुन्दर एवं प्रभावशील मानवीय वृत्तियाँ - दया करुणा उदारता प्रेम आदि - हैं । इस प्रकार " कला और कृपाण " अपनी सीमा में सीमित व संक्षिप्त होते हुए भी उद्देश्य में महान है । ऐतिहासिक नाटकों के क्षेत्र में यह प्रतिनिधि रचना है ।

४.२ मौर्य कालीन नाटक

* वि ज य - प र्व *

विजय - पर्व

भारतीय इतिहास प्रवाह की वेगवती धारा को प्रोत्साहित करने में मौर्य काल का महत्वपूर्ण अपूर्व तथा अतुलनीय है । इस काल में सम्पूर्ण शासन एक सम्राट के आधीन था । मौर्यकाल में भारत की चतुर्मुखी उन्नति हुई । सभी क्षेत्रों में कलाएं अपनी चरमोन्नति पर थीं । इस काल में शासकों ने न केवल राजनीतिक विजय को अपना लक्ष्य बनाया बल्कि अपितु धर्म विजय स्थापित करने में भी वे तत्पर व अग्रसर थे ।

मौर्य-काल की पार्श्व भूमि के आधार पर डा. वर्मा ने अपने दो महत्वपूर्ण नाटक 'विजय पर्व' तथा 'अशोक का शोक' की रचना की है । राजनैतिक दृष्टि से यद्यपि यह युग विदेशी जातियों के आक्रमण का शिकार है, किन्तु सभ्यता के इतिहास की दृष्टि से इस काल की महत्वपूर्ण दृष्टि से विदेशों पर भारतीय संस्कृति का प्रचार एवं प्रसार था । मौर्य कालीन शासन को राजनैतिक विचारों के इतिहास में विशेष महत्ता प्राप्त है । [१]

कथावस्तु :--

सम्राट अशोक पर अब तक जो नाटक लिखे गये हैं वे उनके व्यक्तित्व को पूर्ण व सच्चे रूप में प्रस्तुत करने में असमर्थ हैं । इतिहासकारों ने अशोक के प्रारम्भिक

---

१. डा वर्मा कृत 'अशोक का शोक' एक नाटक के रूप में प्रकाशित हुआ था । 'विजय पर्व' नाटक में नाटककार ने कुछ दृश्य एवं पात्र बढा कर प्रकाशित किया है । अत: यहां विजय पर्व के अध्ययन के अन्तर्गत ही अशोक का शोक का अध्ययन समाहित मान लिया गया है ।

१. देखिए -- परिशिष्ट -- १ -- उद्धरण -- ४५

जीवन को उपेक्षित कर दिया है । ऐसे महान व्यक्तित्व की उपेक्षा का डा. वर्मा को क्षोभ हुआ तथा उन्होंने अशोक सम्बन्धी सामग्री का अध्ययन कर अशोक के सम्बन्ध में अपना मत स्थिर किया । वास्तव में अशोक की क्रूरता का जो अतिरंजित चित्र बौद्ध गाथाओं में है उसे सत्य मानना उचित नहीं ।

यदि अशोक के जीवन के पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध को दो भागों में विभक्त किया जाय तो कलिंग विजय ही एक ऐसी घटना है जिसने अशोक के जीवन की दिशा को बदल दिया । यही घटना प्रस्तुत नाटक की प्रमुख घटना है जिसके द्वारा कार्य की अवस्था चरम सीमा तक पहुंच कर निगति की ओर चली जाती है ।

प्रस्तुत नाटक में तीन अंक है । तीनों अंकों में एक-एक बिन्दु है जिसे केन्द्र बना कर ही वस्तु परिधि के चारों ओर घूमती है । प्रथम अंक में २७३ ई.पू. की घटना है जब सीन के तट पर अशोक को मगध का सम्राट होने का वरदान मिला था । इस अंक में कथानक का परिचय प्राप्त हो जाता है । प्रमुख पात्र अशोक व सुसीम हमारे समक्ष आते हैं । अशोक का उदात्त चरित्र दर्शकों की सद्भावना प्राप्त कर लेता है । वैसे तो यह पूर्ण है तथा एकांकी के रूप में अभिनीत किया जा सकता है किन्तु इसमें भविष्य की कथा का संकेत है । यहीं सुगाम व सुसीम अपनी पराजय स्वीकार कर लेते हैं तथा फिर उनसे मिलने की बात कह कर चले जाते हैं ।

प्रथम अंक के उपरान्त दर्शक सोचते हैं कि अब क्या होगा ? क्या सुसीम व सुगाम शान्त हो जायेंगे ? क्या वे अपनी पराजय को इतनी सरलता से स्वीकार कर लेंगे अथवा किसी नये षड्यन्त्र की सृष्टि करेंगे ?

उनकी इसी उत्सुकता के बीच अगले अंक की घटना सामने आती है । महादेवी व संघमित्रा तलवारों की आरती कर रही हैं । उनके वार्तालाप से कुछ देर के लिए कुछ शान्ति अनुभव करते हैं, तभी " भयानक विद्रोह " की सूचना लिए महेन्द्र प्रवेश करता है ।

कुतूहल की शान्ति नहीं होती -- दर्शक सोचते हैं कि सुगाम का यह षड्यन्त्र सफल होगा । अशोक अपने महान व्यक्तित्व व शौर्य के साथ प्रवेश करता है, वह सभी घटनाओं से परिचित है । बुद्धिमित्र का आगमन पुन: शंका उत्पन्न करता है और दर्शक उज्जयिनी के विद्रोह की वास्तविक स्थिति स से परिचित होते हैं । सुगाम का पाटलीपुत्र में उपस्थित होना दर्शकों में उत्सुकता जागृत करता है । जब सुगाम बन्दी रूप में अशोक के सम्मुख उपस्थित किए जाते हैं तो दर्शक यह जानने के लिए उत्सुक रहते हैं कि अशोक सुगाम को क्या दण्ड देंगे ? जब अशोक इस बार उन्हें क्षमा करते हैं तो दर्शकों के हृदय में अशोक के प्रति आदर की भावना का उदय होता है ।

तृतीय अंक का प्रारम्भ कलिंग के एक युद्ध शिविर से होता है, जहां युद्ध की विभीषिका से चिन्तित महादेवी अपनी परिचारिका चारुमित्रा से वार्तालाप कर रही हैं । अशोक युद्ध में आनन्द लेते हैं, किन्तु महादेवी भी ऐसा युद्धमय वातावरण को रुचि कर नहीं समझती, जिसमें निरापराधों का रक्त बहाया जाय । वे अशोक के हृदय में दया का संचार करना चाहती हैं जिसे वे इस युद्ध में भूल गये हैं । अपने पूर्वजों तथा मगध के सम्मान की रक्षा के लिए युद्ध समाप्त करना नहीं चाहते । किन्तु कुछ घटनाएं इस प्रकार घटित होती हैं कि सम्राट अशोक हिंसा से अहिंसा के पथ पर अग्रसर होते हैं । कलिंग की एक स्त्री अपने मृत शिशु को लिए आती है, अशोक असंख्य मृत तथा आहतों को देखते हैं सब से अन्त में उनकी अंक रक्षिका का बलिदान उनके हृदय पर गहरा प्रभाव डालता है और वे अहिंसा की नीति को अपनाते हैं ।

इस प्रकार प्रस्तुत नाटक में अशोक के सिंहासनारोहण से लेकर कलिंग विजय तक की कथा है । कलिंग विजय से ही उनकी धर्म विजय आरम्भ होती है । युद्ध का अन्तिम दिन उनका विजय पर्व है, यह विजय कलिंग पर अशोक की विजय ही नहीं, हिंसा पर अहिंसा की विजय है, क्रूरता पर दया की विजय है । इसी कारण इस नाटक का नाम विजय पर्व है ।

ऐतिहासिकता :पक्ष :-

भारतीय इतिहास में अशोक का एक विशिष्ट तथा महत्वपूर्ण स्थान है। सम्राट अशोक का ऐतिहासिक वृत्त प्राचीनता के आवरण में धूमिल हो गया है। अशोक संबंधी जो ऐतिहासिक स्त्रोत हैं वे प्रामाणिक तथ्यों से हमें परिचित कराने में सर्वथा असमर्थ हैं। इसका कारण प्राचीन काल में इतिहास लेखन की प्रथा का न होना है। विदेशी पर्यटकों तथा विवरण सम्बन्धी जो साहित्य उपलब्ध है उसमें कहीं-कहीं या तो अतिरंजना का समावेश हो गया है या अपने देश प्रेम से प्रेरित होकर विभिन्न तथ्यों का उल्लेख नहीं किया गया है।

अशोक दिव्यावदान के अनुसार चम्पा की परम सुन्दरी कन्या का पुत्र था। वह दु:स्पर्शगात्र " था। इस लिए वह अपने पिता बिन्दुसार का प्रेम-पात्र न बन सका। अशोक के प्रारम्भिक जीवनवृत्त सम्बन्धी अधिक सामग्री नहीं उपलब्ध है। जो भी है वह अपने दृष्टिकोण या ध्येय की पूर्ति कर वास्तविक घटना या वृत्त के सम्बन्ध में प्रकाश नहीं डालता। अशोक के प्रारम्भिक जीवन के सम्बन्ध में कोई निश्चित सिद्ध प्रमाण नहीं है। उसके विषय में अनेक किंवदंतियाँ प्रचलित हैं जो तत्कालीन वातावरण व समय के अनुसार सत्य सी प्रतीत होती हैं तथा कुछ ऐसी हैं जिसके विषय में प्रमाण नहीं मिलता।"[१]

अशोक के राज्याभिषेक के सम्बन्ध में प्राय: सभी विद्वान एकमत हैं। बिंदुसार का पुत्र अशोक जो मौर्यशासन का तृतीय पुरुष था, बिन्दुसार की मृत्यु के सात वर्ष पश्चात् मौर्य शासन का स्वामी हुआ। उसको साधारणतया अशोक के नाम से पुकारा जाता था। तिथी २७३ ईस्वी।[२] यह माना जाता है तथा यह प्रामाणिक तथ्य है

---

१. मूल उद्धरण के लिए देखिए --- परिशिष्ट - १ - उद्धरण - ४६

२. ,, ,, - १ - ,, - ४७

कि अशोक ने अपने पिता व पितामह की मृत्यु के पश्चात् २७४ ईस्वी में राज्यारोहण किया तथा उसने चालीस वर्ष शासन किया । १

महावंश के अनुसार अशोक के सौ भाई थे । इन भाइयों में सुमन (दिव्यादान का सुसीम) ज्येष्ठ और तिष्य कनिष्ठ था । परन्तु वास्तव में अशोक के कितने भाई थे कितनों को उसने युद्ध में पराजित किया यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता । अशोक के शिलालेखों में उसके कुछ भाइयों के जीवित रहने का प्रमाण मिलता है । परन्तु चार वर्ष तक कलह तथा भ्रात युद्ध से यह ज्ञात होता है कि अशोक को चार वर्ष तक राज्याधिकार के लिए युद्ध करना पड़ा था । अशोक का शोक ' तथा 'विजय पर्व ' नाटकों में अशोक के अन्य भाइयों सुनाम, सुसीम, सुतस, सुबेता में से केवल सुसीम के अस्तित्व की साक्षी इतिहास देता है ।

जब तक्षशिला में दुबारा विद्रोह हुआ तो उसे शान्त करने के लिए कुमार सुसीम को भेजा गया । २ विदेशी इतिहासकारों विगताशोक तथा तिष्य नामक अशोक के भाइयों का उल्लेख किया है ।

विजय पर्व में अशोक के दो पुत्र कुणाल तथा महेन्द्र का उल्लेख किया गया है । कुणाल अशोक का ज्येष्ठ पुत्र था । उसकी आँखें हिमालय के कुनाल पक्षी के समान सुन्दर थी । अत: उसका नाम कुणाल पड़ा । एक बार एक विद्रोह शान्त करने के लिए अशोक ने अपने पुत्र कुणाल को भेजा था वहाँ अपने प्रयत्न में उसे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। विद्रोह शान्त करने के बाद कुणाल तक्षशिला के प्रान्तीय शासक के रूप में कार्य करता रहा वह वहाँ बहुत लोक-प्रिय था । ३

---

१. देखिए - परिशिष्ट -१ - उद्धरण ५८
यद्यपि स्मिथ तथा मैकफिल साहब के विचारानुसार अशोक के राज्यारोहण की तिथियों में अंतर है परन्तु डा. वर्मा ने स्मिथ साहब की तिथी को प्रामाणिक मानकर उसको नाटक में स्थान दिया है ।

कुणाल के विषय में अनेक दंत कथाएं प्रसिद्ध हैं। जिसमें अशोक की रानी तिष्यरक्षिता का कुणाल पर वासनात्मक दृष्टि होना तथा अपने-अपने प्रयत्न में असफल होने पर उसकी आँखें निकलवा लेना प्रसिद्ध है।

प्रसिद्ध इतिहासकार स्मिथ कहते हैं :- सातवीं शताब्दी ईसा में पर्यटकों को तक्षशिला कहा गया कि इसे अशोक ने अपने प्रिय पुत्र कुणाल की स्मृति में बनवाया था, तथा यहीं उसकी आँखें निकलवाईं गईं थीं।" १

महेन्द्र अशोक का कनिष्ठ पुत्र था। बौद्ध जातक कथाओं तथा विदेशी दंतकथाओं में महेन्द्र विषयक अनेक कथाएं प्रचलित हैं। अशोक ने अपने पिता के राज्यकाल में जब वह अवन्ती का महामात्र था, वैश्य जाति की एक कन्या से सम्बन्ध स्थापित कर लिया उस देवी नामक कन्या ने उज्जैन में एक पुत्र रत्न उत्पन्न किया जो बुद्ध की मृत्यु के दो-सौ चार वर्ष पश्चात् उत्पन्न हुआ था। २ महेन्द्र का बौद्ध प्रचारक के रूप में लंका जाना तथा अशोक के धर्म प्रचार में सहायता देना उसका बौद्ध अनुयायी होना सिद्ध करता है। महेन्द्र के कारण ही लंका निवासियों को अपनी धर्म विषयक त्रुटियों का ज्ञान हुआ तथा वे धर्म व सत्य के वास्तविक तथ्य से अवगत हुए। ३

उपगुप्त के अस्तित्व का समर्थन बौद्ध जातक कथाओं के साथ साथ इतिहास भी करता है। इतिहास इस तथ्य का समर्थन करता है कि उपगुप्त अशोक के राजगुरु थे, तथा उन्होंने ही अशोक को बौद्ध धर्म में दीक्षित किया था। अशोक की कपिलवस्तु

---

१. भारत का प्राचीन इतिहास - डा. सत्यकेतु विद्यालंकार- पृ.सं. ३३६
२. विस्तार के लिए देखिए -- " अशोक " -- द्वारा - विंसेन्ट स्मिथ
३. भारत का प्राचीन इतिहास - डा. सत्यकेतु विद्यालंकार -- पृ.सं. ३५६
१. देखिए - परिशिष्ट - १ - उद्धरण - ४९
२. ,, ,, १ ,, ५०
३. ,, ,, १ ,, ५२

आदि तीर्थ स्थानों की यात्रा उन्हीं के निर्देशन में हुई थी ।[1] "रुम्मिनदेई के खंभे के ऊपर खुदे हुए शब्दों की " यहाँ वह उत्पन्न हुआ था जिसे सर्वाधिक सम्मान प्राप्त हुआ था । कहा जाता है कि प्रस्तुत शब्द उपगुप्त के अशोक के प्रति कहे गये थे, जब वह अशोक के साथ इस पवित्र स्थान पर आया था ।[2] विंसेंट स्मिथ के अनुसार जैसे कुमारपाल को उत्तरोत्तर काल में हेमचन्द्र ने परिवर्तित किया था, वैसे ही उपगुप्त ने अशोक को बौद्ध धर्म में दीक्षित किया । वास्तव में उपगुप्त ऐतिहासिक व्यक्तित्व है ।[3]

तिष्यरक्षिता स्त्री पात्रों में प्रमुख ऐतिहासिक पात्र है । यद्यपि स्पष्ट रूप से किसी भी इतिहासकार ने उसके वास्तविक नाम तथा अस्तित्व की ओर संकेत नहीं किया है परन्तु फिर भी बौद्ध साहित्य, शिलालेखों तथा जनश्रुतियों के आधार पर उसके अस्तित्व का समर्थन होता है । वृद्धावस्था में अशोक ने तिष्य रक्षिता से विवाह किया था । वह उज्जैनी के सम्पन्न श्रेष्ठि की कन्या तथा परम रूपवती थी । अपनी नियुक्ति (विवाह) के चौथे वर्ष तिष्यरक्षिता ने अपने आकर्षण तथा व्यवहार से अशोक को इतना आकर्षित कर लिया कि उसको पटरानी बना दिया गया । वह परम सुन्दरी व लावण्यमयी थी ।[4]

संघमित्रा अशोक की पुत्री थी , इस तथ्य से किसी भी भारतीय तथा विदेशी इतिहास इतिहासकार ने अस्वीकार नहीं किया है । वह बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए अपने ज्येष्ठ भ्राता महेन्द्र के साथ लंका गई थी । इसकी माता का नाम असंधिमित्रा[+] था ।अशोक के राजगुरु उपगुप्त ने महेन्द्र तथा संघमित्रा को बौद्ध धर्म में दीक्षित किया था । देवी से

---

१. देखिए - परिशिष्ट - १ - उद्धरण - ५२
२. ,, ,, १ ,, ५३
३. ,, ,, १ ,, ५४
पारंपरिक कथाओं व किंवदंतियों के अनुसार प्रसिद्ध गणिका वासवदत्ता के धर्म परिवर्तन व उद्धार का श्रेय भी उपगुप्त को दिया जाता है ।
४. देखिए- परिशिष्ट - १ - उद्धरण -५५
रामनरेश त्रिपाठी की कहानी 'कुणाल' में भी तिष्यरक्षिता अपने क्रोध व प्रतिदान :-

विवाह करने के दो वर्ष पश्चात संघमित्रा नामक पुत्री उत्पन्न हुई । देवी ने वैदासगिरी न छोड़ा परन्तु राज्यारोहण के पश्चात सन्तान पिता के साथ रही । संघमित्रा का विवाह अग्निब्रह्मा नामक अशोक के भतीजे के साथ हुआ जिससे संघमित्रा के सुमन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । [१]

गौण-पात्र :--

मौर्यकालीन गौण काल्पनिक पात्रों में सुगाम की कल्पना घटनाओं की गति में सहायता प्रदान करने के लिए भी की गई है । वह मगध का विद्रोही राजकुमार है । उसका विद्रोह मगध के लिए समस्या बन जाता है । उसका कारण प्रजा का उसका साथ न देना है । राहुल पुष्यमित्र, उत्पलाक्ष, शंकरादित्य आदि नाटक को केवल गतिशील करते हैं । स्वयंप्रभा का रूप दो रूपों में प्रस्तुत है महादेवी की परिचारिका एवं चारुमित्रा की सखी के रूप में ।

काल्पनिक-पात्र :--

मौर्यकालीन नाटक व एकांकियों की प्रमुख पात्रा चारुमित्रा है । चारुमित्रा एक काल्पनिक पात्र होते हुए भी वर्मा जी के ऐतिहासिक नाटक में इस प्रकार घुल मिल गई है कि उसके अस्तित्व का अंश भिन्न नहीं किया जा सकता । वर्मा जी ने अशोक के विराट व्यक्तित्व पर सीधी प्रकाश रेखा न डालते हुए चारुमित्रा के माध्यम से अशोक के मनोविज्ञान की बिखरती हुई चिन्ता रेखा को संकल्प के रूप में परिवर्तित होते हुए देखा है ।

:- की भावना के कारण राजकीय आज्ञा द्वारा कुणाल को नेत्र-विहीन कर देती है ।

* इतिहासकार सत्यकेतु विद्यालंकार संघमित्रा की माता का नाम असंधिमित्रा बताते हैं ।

१. देखिए - परिशिष्ट- १ - उद्धरण - ५६

वाकमित्रा के माध्यम से नाटक के पात्रों व उसके चारित्रिक सौन्दर्य की सूक्ष्म रेखाओं में रंग भरा गया है । वास्तव में वाकमित्रा ही सम्पूर्ण नाटक की संचालिका सी प्रतीत होती है जो अनेक गहराइयों में डूबती उतरती अपने बलिदान की चरम सीमा पर पहुंच जाती है ।

वाकमित्रा का ऐतिहास तत्व भी कल्पना के रंगों से प्राणवान हो उठा है तथा उससे संबंधित घटना विधान को इतने जीवंत रूप में प्रस्तुत किया गया है कि उसके ऐतिहासिक यथार्थवाद पर कोई सन्देह नहीं कर सकता । वाकमित्रा के साथ दो ऐतिहासिक घटनाओं से सम्बन्धित है । अशोक की कलिंग विजय तथा उसका हृदय परिवर्तन कलिंग युद्ध की विभिषिका से अशोक के हृदय में भावुकता व संवेदना उत्पन्न हुई । जिससे वह प्राणीमात्र के प्रति सदय हो उठा । वास्तव में अशोक के हृदय परिवर्तन का श्रेय उपगुप्त को दिया जाता है । ह्वेनसांग के अनुसार, उपगुप्त से मिलने के पश्चात् अशोक को अपने द्वारा बनाये गये नर्क को देख कर पश्चाताप हुआ । उसने आज्ञा दी सम्पूर्ण राज्य में स्तूपों का निर्माण किया जाए तथा बुद्ध के अस्थिअवशेष के स्वागत के लिए तैयारियां की जाएं । [१]

परन्तु वर्मा जी ने यह श्रेय वाकमित्रा के बलिदान व स्वामीभक्ति को दिया है । अशोक का शोक व विजय पर्व के अंतिम पृष्ठों में अशोक का कथन है :-

" वाक तू मरेगी नहीं । जब मैंने आजीवन प्राणियों की सुरक्षा का व्रत ले लिया है, तो तेरे जीवन की सुरक्षा में मैं सारी शक्ति लगा दूंगा । मगध साम्राज्य के चिकित्सक तेरे जीवन की रक्षा करेंगे और समस्त जम्बू द्वीप के संघाराम तेरे जीवन की मंगल कामना ।" [२]

---

१. देखिए - परिशिष्ट - १ - उद्धरण - ५७

२. अशोक का शोक " डा. रामकुमार वर्मा -- पृ. सं. ९९

घटना :-

वर्मा जी के ऐतिहासिक मार्यकालीन नाटक व स्कांदी की प्रमुख घटना कलिंग युद्ध है जिसको आधारशिला बनाकर उनके मौलिक नाटकों की रचना की गई है ।

बिन्दुसार की मृत्यु के पश्चात गृह कलह में सफल होकर, अशोक एक बहुत बड़े साम्राज्य का अधिपति बन गया, जो पूर्व में बंगाल की खाड़ी से प्रारम्भ हो कर पश्चिम में हिन्दुकुश पर्वत माला से भी परे तक फैला हुआ था । परन्तु कलिंग साम्राज्य ने अभी तक अशोक की आधीनता स्वीकार न की थी । अशोक ने अपने राज्याभिषेक के आठवें वर्ष (२६१ ई.पू.) में कलिंग को अपने आक्रमण का लक्ष्य बनाया । उस समय कलिंग अत्यन्त शक्तिशाली व वैभव सम्पन्न देश था । मेगस्थनीज़ के अनुसार वहां की सेना में साठ हजार पदाति, एक हजार अश्वारोही और सात सौ हाथी थे । मगध की विश्व विजयिनी सेनाओं का सामना कर सकना कलिंग वासियों के लिए सम्भव न था । इस युद्ध में कलिंग के एक लाख आदमी मारे गये तथा डेढ़ लाख कैदी हुए । इससे कई गुना आदमी मारे गये तथा डेढ़ लाख कैदी हुए । इससे कई गुना आदमी युद्ध के बाद आनेवाली विपत्तियों से काल कलावित हुए ।

वर्मा जी द्वारा रचित दोनों नाटकों 'अशोक का शोक' तथा 'विजय पर्व' में कलिंग युद्ध का वर्णन किया गया है । विजय पर्व में सम्राट अशोक कलिंग युद्ध संबंधी अपना मत व्यक्त करते हुए कहते हैं --

" जैसी कलिंग से युद्ध करते समय ऐसा ज्ञात होता था, जैसे पाटलीपुत्र की शक्ति से एक प्रलय उत्पन्न हुआ है जो कलिंग को रक्त के समुद्र में डुबोना चाहता है ।तक्षशिला, गांधार तथा उज्जैनी के बड़े-बड़े वीर मेरी घूमती हुई दृष्टि में ही अपनी तलवार घुमाते थे । सेना की एक-एक टुकड़ी पानी की लहर की तरह बढ़ती थी, और धीरे-धीरे बढ़ी होकर शत्रु की तलवार से टकराती थी, वे तलवार भी नहीं घुमा सकते थे । उस समय ऐसा ज्ञात होता था कि मेरी तलवार भी तलवार थी जिसके सामने घूमा हुआ शस्त्र भी लक्ष्य

भ्रष्ट हो जाता था ।" [1]

उसके राज्य काल की सबसे बड़ी घटना जिसका शिलालेखों में उल्लेख मिलता है, उसकी कलिंग विजय है - कलिंग मोटे तौर पर बंगाल की खाड़ी के तट के उस भू-भाग का नाम था जो वैतरणी व लांगूलिया नदियों के बीच में है । उसने इस युद्ध की भयानकता व कष्टों का सजीव वर्णन किया है । [2] इतिहासकार स्मिथ महोदय कहते हैं कि अशोक ने राज्यारोहण के आठवें वर्ष कलिंग पर आक्रमण किया, एक सौ पचास हजार आदमी दु:ख से प्रभावित हुए तथा उससे कई गुना युद्ध में मारे गये । [3] जब अशोक सिंहासनारूढ़ हुआ कलिंग एक स्वतन्त्र देश था । यह सम्भव है कि अशोक ने अपने पिता द्वारा दक्षिण देशीय अविजित राज्यों को विजय करना महत्वपूर्ण समझा हो, इस लिए उसने कलिंग पर आक्रमण किया तथा उसको अपने आधीन कर लिया । [4]

वर्मा जी के नाटक की दूसरी महत्वपूर्ण घटना राज्य प्राप्ति के लिए अशोक का अपने भाइयों से युद्ध करना है । इतिहास इस तथ्य की साक्षी देता है कि जब तक्षशिला में दुबारा विद्रोह हुआ तो कुमार सुसीम को वहां भेजा गया । दिव्यावदान के अनुसार अशोक जान बूझ कर वहां नहीं गया था । वह सम्भवत: बिन्दुसार की वृद्धावस्था एवं मरणासन्न जानकर नहीं गया । इसी समय बिन्दुसार की मृत्यु हो गई तथा अशोक ने पाटलीपुत्र पर अधिकार कर लिया । सुसीम को जब यह समाचार ज्ञात हुआ तो उसने पाटलीपुत्र की ओर प्रस्थान किया परन्तु अशोक भी सचेत था । पाटलीपुत्र के सब महा-द्वारों पर सैनिक नियुक्त कर दिये गये थे । राधा गुप्त अग्र महामात्य ने सुसीम को युद्ध करने के प्रोत्साहित किया । दोनों भाइयों में युद्ध हुआ जिसमें सुसीम मारा

---

१. विजय पर्व -- डा. रामकुमार वर्मा -- पृ. सं. १०७

२. मैगस्थनीज़ विवरण का अंश

३. देखिए - परिशिष्ट - एक - उद्धरण - ५८

४. " " " " ५९

गया । पर यहीं पर मामले का फैसला नहीं हुआ , अशोक के और भाई भी थे । वे सभी राज्य के उम्मीदवार थे । चार साल तक यह लड़ाई होती रही । अन्त में अशोक की विजय हुई । अपने भाइयों को परास्त कर अशोक ने अपने राज्य को निष्कंटक बना लिया ।[१]

बिन्दुसार की रुग्णावस्था का समाचार पाकर अशोक ने अपनी गद्दी को छोड़ दिया तथा पाटलीपुत्र की तरफ भागा । वहां पहुंचते ही उसने अपने ज्येष्ठ भ्राता सुमन तथा अन्य अट्ठानवे भाइयों को मार डाला । केवल कनिष्ठ भ्राता तिष्य ही जीवित बचा ।[२] परन्तु उपरोक्त स्मिथ महोदय के मत के विपरीत मैकफिल महोदय कहते हैं अशोक ने अपने भाइयों के रक्त के समुद्र बहाकर राज्य प्राप्त किया । इस कथा को अत्यधिक महत्त्व प्राप्त है । इसमें सन्देह नहीं बौद्धों ने उसका चरित्र इतना अधिक कालिमा युक्त चित्रित किया है कि जितना उनसे हो सकता था । उसका कारण यह था कि वे बौद्ध धर्म के प्रभाव व कहानियों का प्रसार व प्रचार करना चाहते थे ।[३]

वास्तविक तथ्य यह है कि स्तूपों, शिलालेखों व अन्य प्राप्त सामग्री से भी अशोक के भाई-बहनों का जीवित रहना सिद्ध होता है । डा.वर्मा ने उपरोक्त तथ्य को ही मान्यता प्रदान कर अशोक व उसके भाइयों से युद्ध नहीं करवाया वरन् प्रेम व स्नेह से अशोक अपने भाइयों पर विजय प्राप्त कर लेता है । अशोक के अपने भाई सुसीम के प्रति वचन हैं :-

" कुमार सुसीम ! राज्यश्री एक महापर्व मनाती है । उसमें महत्वाकांक्षा की भरी नदी में स्नान होता है । गुप्त अभिसंधियों का मंत्र-पाठ होता है । प्रशस्तियों के

---

१. भारत का प्राचीन इतिहास -- डा.सत्यकेतु विद्यालंकार - पृ. सं. ३३६
२. देखिए - परिशिष्ट - १ उद्धरण - ६०
३. ,, ,, १ ,, ६१
४. विजय पर्व -- डा. रामकुमार वर्मा - पृ.सं. ४३

संगीत मढ़े जाते हैं और ऐश्वर्य के पुष्प बिखेरे जाते हैं। पाटलीपुत्र की राज्यश्री में यह कुछ नहीं होगा। उसमें प्राचीन राज्य पुरुषों की अर्चना में केवल प्रेम की पुष्पांजलि अर्पित होगी और प्राणों के दीप जलेंगे। यही राजनीति है - - - - यही राज्यश्री है।" १

चरित्र-चित्रण :--

अशोक अत्यन्त प्रसिद्ध ऐतिहासिक पात्र है। उसका परिचय नाटककार की भाषा में - " वे अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से कुछ क्षणों तक अप्रतिम बना देते हैं और अपनी विजय की विपदाओं की मृत्यु रेखाओं से भी गिनते हैं। वे प्यार के अनुकूल नहीं क्रूरता के प्रतिकूल नहीं अशोक में संघर्ष या द्वन्द्व न होकर आघात है, चोट है। अशोक वीर, क्रूर व भयानक भी हैं। वे गौरवमय पितामह के पद चिन्हों पर चलना चाहते हैं। वे महा-देवी से कहते हैं :-

" मैं क्या कह रही हो देवी! युद्ध का रुक जाना पाटलीपुत्र की उन्नति का रुक जाना है। किसी भी राज्य की सीमा तलवार से खींची जाती है और सीमा को स्थायी रखने के लिए उसमें रक्त का रंग भरा जाता है।" २

अशोक के चरित्र को गरिमा प्रदान करने में नाटककार की प्रतिभा आद्यंत प्रगतिशील रही है। वह धीरोदात्त नायक है। क्षमाशीलता, सहिष्णुता, औदार्य, शौर्य, गाम्भीर्य आदि गुणों से अपने प्रगाढ़ व्यक्तित्व में अंगीभूत कर उन्होंने महानायक कहलाने की योग्यता प्राप्त कर ली है। उनके अदम्य साहस व आत्म-विश्वास का उससे और

---

१. विजय पर्व " - डा. रामकुमार वर्मा -- पृ.सं. ४३

२. अशोक का शोक -- डा. रामकुमार वर्मा - ,, ३७

अजातशत्रु नाटक में बिम्बसार का भी कथन है " नवीन रक्त अपनी राज्यश्री सदैव तलवार के दर्पण में देखना चाहता है।"

अधिक प्रमाण क्या हो सकता है कि वे विपत्ति तथा विद्रोह की स्थिति में भी अंग रक्षक को अपने साथ अस्वीकार कर देते हैं ।

" वह सम्राट ही क्या जिसे अंग रक्षक की आवश्यकता हो । सम्राट तो वही है जो सम्यक रूप से विचर सके । संतोष से प्रजा उसकी श्री की सराहना कर सके । अंग रक्षक की नियुक्ति प्रजा के प्रति अविश्वास है ।" १

डा. वर्मा ने अशोक को क्षमाशील व्यक्ति के रूप में चित्रित किया है । उनकी नीति आत्म-विश्वास की नीति है ।आत्मविश्वास जीवन के सत्य को पहचानने का बीज मन्त्र है । अशोक ने अपने विद्रोही भाइयों को भी दो बार क्षमा कर दिया ।यद्यपि राजनैतिक परिस्थितियोंवश उन्हें चारुमित्रा पर सन्देह होता है परन्तु महादेवी के अनुरोध पर वे चारु को क्षमादान देते हैं ।

परन्तु " विजय पर्व " अशोक का शोक " चारुमित्रा " आदि नाटक व एकांकी में अशोक का चरित्र समतल नहीं है । उनका चरित्र समय व परिस्थिति के प्रहार व आघात से विकसित होता चलता है । अशोक के मानसिक परिवर्तन की भूमि का विस्तृत है । इस परिवर्तन का मनोविज्ञान क्रमश: निम्न घटनाओं के रूप में विकसित हुआ है ।

१ :- तिष्यरक्षिता का बार बार शान्ति के लिए आग्रह ।

२ :- निरीह शिशु की हत्या ।

३ :- शिशु की माता की मृत्यु ।

४ :- चारुमित्रा की स्वामी भक्ति व बलिदान ।

अशोक के चरित्र के इस आरोह - अवरोह को हम निम्न प्रकार से प्रकट कर सकते हैं :-

हिंसक अशोक

| तिष्यरक्षिता का युद्ध रोकने का आग्रह

| शिशु की हत्या

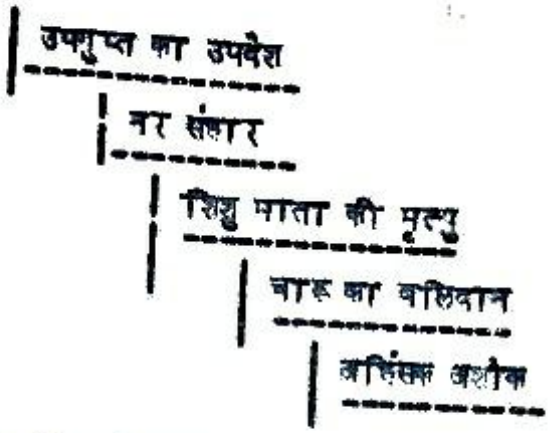

उपगुप्त का उपदेश

नर संहार

शिशु माता की मृत्यु

चारु का बलिदान

अहिंसक अशोक

भारतीय इतिहास में अशोक का स्थान अत्यन्त उच्च व सम्माननीय है। उसके राज्य का आधार लोक धर्म व लोक कल्याण था। उसके शासन काल में राज्य की सीमाओं को उसके लोक कल्याण व लोक धर्म ने बढ़ाया। अन्य मौर्य शासकों व अशोक की राजनीति में यही मूलभूत अन्तर था। [१]

तिष्यरक्षिता विशुद्ध ऐतिहासिक पात्रा है। वह सम्राट अशोक की पटरानी है। वह राजकुल की होने के कारण उच्च संस्कार युक्त भावना व इच्छा रखती है। वह कुशल कलाविद व चित्रकार है। तिष्यरक्षिता के चरित्र में संघर्ष व अंतर्द्वन्द्व नहीं है। वह तुरन्त निर्णय लेती है मानसिक दुविधाएं उसे प्रिय नहीं --

" सैनिकों के लिए मृत्यु मनोरंजन है, गुप्तचरों के लिए कर्मनाशा। ठीक है, अभियुक्त ? [२]

वह एक विशाल साम्राज्य की स्वामिनी है। विलास व वैभव उसके चरणों में लोटते हैं परन्तु वैभव व भोग-विलास की अथाह नदी के किनारे पर रहते हुए भी वह प्यासी है -- अपने प्रियतम के सम्पर्क की।

---

१. देखिए -- परिशिष्ट - - - १ - - उद्धरण -- ६२

२. अशोक का शोक -- डा. वर्मा - पृ. सं. ८१

" कितने दिनों से इस शिविर में रहते हुए भी जैसे मेरा सुख सपना बनता जा रहा है । रात्रि में युद्ध की समाप्ति पर ही उनके दर्शन कर लेती हूं तो ऐसा ज्ञात होता है जैसे कोई वृद्धा युवती बन गई हो ।" १

वह युद्ध से घृणा करती है क्योंकि वह युद्ध को अपने जीवन के खिलते हुए पुष्प में कांटा समझती है । वह चाहती है जन-जीवन शान्त हो, हत्या न हो, सभी प्रेम व अहिंसा के मार्ग पर चलें । वह अशोक के हृदय परिवर्तन के लिए उन्हें उपगुप्त का उपदेश सुनाती है ।

उसे अपने पति से प्रेम है । वह अपने पति की निन्दा नहीं सुन सकती । उसे चारुमित्रा से भी प्रेम है । वास्तव में उसमें नारी सुलभ सभी गुण विद्यमान हैं ।

चारुमित्रा का चरित्र पावन है । वह कलिंगवासिनी है तथा बाल्यावस्था से ही अशोक व तिष्यरक्षिता की छत्रछाया में पलने के कारण उसमें स्वामी भक्ति की भावना का अंकुर पूर्ण रूप से प्रस्फुटित हो पल्लवित हो चुका है । उसे सभी राजसी सुख प्राप्त हैं फिर भी वह सन्तुष्ट नहीं, उसके हृदय में संघर्ष व अन्तर्द्वन्द्व की भयानक आंधी है । उसकी देश प्रेम की भावना सराहनीय व प्रशंसनीय है --

" मेरे कलिंग निवासी वीर हैं । वे माता की तरह अपनी मातृ-भूमि का आदर करते हैं, जब तक एक भी वीर जीवित है तब तक कलिंग का जयघोष वायु को भी सहन करना पड़ेगा ।" २

इसके साथ ही उसके मन में स्वामी भक्ति की भावना भी दृढ़ है वह सम्राट को आदर वह भक्ति की भावना से देखती है । वह इस विषय में महादेवी से कहती है --

" संसार में उनका अपमान करने की क्षमता किसी में नहीं महादेवी । और मैं

---

१. अशोक का शोक -- डा. वर्मा -- पृ. सं. २६

२. विजय पर्व -- डा. वर्मा. -- पृ. सं. ६७

तो उनकी आजन्मा सेविका हूं।" १

उसे फिर भी विश्वास नहीं कि ये दो विरोधी तत्व उसे बचा लेंगे। क्या उसे अशोक निष्पाप व दोष रहित मान लेंगे। यह कैसे सम्भव है, वह तो शत्रु देश की कन्या है। कभी भी उस पर देश द्रोह व विश्वासघात का सन्देह किया जा सकता है। उसका अनुमान उचित ही था। तिष्यरक्षिता के समक्ष हृदय से उसके भाव प्रकट हो ही गये।

" तू विद्रोह की बातें करती है चारु। तब तो अपने सम्राट के साथ भी विश्वासघात कर सकती है।" २

चारुमित्रा पर यह दोषारोपण था। उसका स्वच्छ स्वाभिमानिनी हृदय यह कैसे सहन कर सकता था। उसे अपने अस्तित्व का उस राजनीतिक स्थिति में पूर्ण ज्ञान था।

" सम्राट कहते हैं, यह युद्ध अभी बहुत दिनों तक चलेगा। कोई न कोई ऐसा प्रसंग आ ही जायेगा, जब वे मुझे अग्नि से साक्षात्कार करा दें। इसी लिए तो मैं नाच रही थी कि देश के वीर जैसे युद्ध भूमि में गति लेते हैं, वैसे ही मैं भी अंगारों पर नृत्य की गति ले सकूं। देख! अग्नि पर यह नृत्य कैसा रहेगा।" ३

वह अपने इस मानसिक संघर्ष का अन्त आत्म हत्या में देखती है परन्तु विधि के विधान में यह निर्णय उसके लिए न था। महानदी के लहरों में सदैव के लिए विश्राम का आश्रय खोजती चारुमित्रा को अपने कलिंग सैनिकों के षड्यंत्रों का सन्देह हो जाता है। तथा उनके वार्तालाप द्वारा वह उनके निश्चय से अवगत हो जाती है तथा उन्हें धिक्कारती हुई कहती है :-

---

१. " अशोक का शोक " -- डा वर्मा -- पृ सं. २५

२. " विजय पर्व " -- डा. वर्मा -- पृ.सं. ६७

३. अशोक का शोक -- डा. वर्मा -- पृ. [illegible]

" कायरों ! तुम लोग मेरे कलिंग के नाम को कलंकित करने वाले हो । यदि सम्राट अशोक को मारना है तो युद्ध में तलवार लेकर क्यों नहीं आते ? चोरों की तरह घुस कर एक वीर पुरुष से छल करते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती ।" १

अन्त में अपने स्वामी की रक्षा में ही वह अपने प्राणों का उत्सर्ग कर देती है ।

" सम्राट ! आग के अंगारों पर जो नाचने का आपने अवसर नहीं दिया । अब मैंने अंगारों पर अपनी देह रखने का अवसर आपसे मांग लिया है ।" २

नाटकीय तत्व :--

नाट्यकला की दृष्टि से प्रस्तुत नाटक की सर्व प्रथम विशेषता यही है कि प्रत्येक अंक अपने में पूर्ण होते हुए भी एक दूसरे से संबद्ध है ।

कार्य व्यापार की तीन अवस्थाएं तीनों अंकों में है । प्रथम अंक में अथानक का परिचय प्राप्त होता है, साथ ही विकास भी । दोनों पक्ष हमारे समक्ष आते हैं तथा वे परस्पर संघर्ष के लिए तत्पर हैं । यद्यपि परिस्थितियों की सीमाओं को देखते हुए यह संघर्ष प्रथम अंक में समाप्त हो जाता है, किन्तु दूसरा पक्ष पुन: संघर्ष के लिए तत्पर है । द्वितीय अंक में संघर्ष चरम सीमा पर पहुंच जाता है और तृतीय अंक में निगति होती है ।

नाटक में पांच प्रमुख पात्र हैं । इन पात्रों का चरित्र उभारने का प्रयत्न किया गया है । सभी पात्रों में परिवर्तन होता है , वे गति शील है, स्थिर नहीं ।

कथोपकथन में स्वाभाविकता लाने का नाटककार ने प्रयत्न किया है । पिछले कई वर्षों से उनका रंगमंच से निकट का संबंध रहा है ।इस कारण नाटक अभिनय हो सका

---

१. अशोक का शोक -- डा. वर्मा -- पृ. सं. ६७

२. विजय पर्व -- ,, ,, १२८

है । न तो उलझे हुए वाक्य है और न लम्बे-लम्बे संभाषण । पात्रों की भाषा भी दुरूह नहीं है । भाषा में सरलता इस लिए है कि सभी पात्र एक ही वातावरण में रहने वाले हैं । इसी कारण सभी प्राय: एक सी भाषा बोलते हैं । किन्तु प्रत्येक पात्र की भाषा में उसके व्यक्तित्व की छाप है ।

नाटक में तीन अंक है और तीन ही दृश्य । आजकल नाटक का अभिनय पर्दों पर न होकर सैटों पर होता है । प्रस्तुत नाटक के दृश्यावलियों की योजना में कठिनाई का प्रश्न नहीं है, इन दृश्यों से बशीक कालीन भारत का चित्र उपस्थित हो जायेगा ।

हिन्दी में ऐसे नाटकों का अभाव है, जो रंगमंच पर सफलता के साथ अवतरित हो सकें आज भी उनमें साहित्यिकता भी है । प्रस्तुत नाटक में पाश्चात्य मनोविज्ञान तथा भारतीय रस परम्परा का समन्वय कर उसे अभिनय रूप में प्रस्तुत किया गया है । प्रस्तुत नाटक के नायक सम्राट अशोक के शासन से आज बहुत कुछ ग्रहण किया गया है, उनका धर्म चक्र आज हमारी सरकार का चिन्ह है, उनके अनुकरण पर ही अहिंसा की नीति से हमारे जननायक श्री जवाहरलाल नेहरू विश्व में प्रमुख स्थान बना गये हैं ।

प्रस्तुत नाटक के पठन पाठन से तरुणों में नव-स्फूर्ति आवेगी, ऐसा नाटक-कार का विश्वास है । प्रस्तुत नाटक रंगमंच पर अवतरित होकर जन जीवन में उत्साह के बीज अंकुरित करने में सफल होगा ।

४.३ मराठा कालीन नाटक

* नाना फडणवीस *

" नाना फड़नवीस "

डा. वर्मा द्वारा रचित " नाना फड़नवीस " नाटक अठारवीं शताब्दी के राजनीतिक आधार स्तम्भ तथा महाराष्ट्र के जननायक नाना फड़नवीस के जीवन वृत्त को आधार मान कर रचित हुआ है । तत्कालीन पेशवा वंश के गौरव की अमर गाथा ही इस नाटक की कथा का मेरुदण्ड है । नाटक का कथानक पानीपत के युद्ध की प्रतिक्रिया से आरम्भ होता है । इसमें बालाजी बाजीराव की मन:स्थिति भिन्न-भिन्न परिस्थितियों से प्रभावित होती रहती है यह पार्श्वभूमि वातावरण की सूची सा है । पानीपत का परिणाम जानने की उत्सुकता में ही नाटक का कौतूहल अधिक संचय करता है । शनै: शनै: पानीपत की भयानकता तथा पाण्डुरंग की मृत्यु पेशवा की मन:स्थिति को आन्दोलित करती है किन्तु पेशवा में धैर्य व आशावादिता है । जिससे वह पाण्डुरंग की माता को आश्वासन व धैर्य प्रदान करता है किन्तु दूसरे ही क्षण कासिद द्वारा अपने पुत्र की मृत्यु का समाचार उनकी मन:स्थिति का परिहास सा करने लगता है । ऐसी परिस्थिति में नाना फड़नवीस का वार्तालाप पेशवा के हृदय में पुन: साहस व आशा का संचार करता है और पानीपत की हार जीत में परिणत होने का आभास देती है । इसी आशावाद के ही राह पर प्रथम अंक समाप्त होता है तथा नाना फड़नवीस की स्वस्थ मनोन्नति और उसकी विजय की कामना राजनीति के क्षेत्र में एक नवीन नक्षत्र के उदय होने की सूचना देती है ।

पानीपत की हार का कष्ट पेशवा बालाजी बाजीराव को अधिक समय तक सांसारिक आनन्द का उपभोग करने नहीं देता तथा उनकी मृत्योपरान्त उनके द्वितीय पुत्र माधवराव पेशवा पद पर अभिषिक्त होते हैं । उन्होंने जिस गौरव व प्रताप से महाराष्ट्र की राजनीतिक बागडोर का संचालन किया यह दूसरे अंक के प्रारम्भ में प्रकट हो जाता है । विद्रोह की झलक का आभास कराने के लिए काका रघुनाथ राव व मामी आनन्दीबाई

के चित्र प्रस्तुत किये गये हैं तथा उनको किस प्रकार पेशवा माधवराव ने अपनी आत्मीयता और सच्चे स्नेह से रंजित किया यह नाटक को उच्च अनुपम आभा प्रदान करने में समर्थ हुआ । पेशवा माधवराव की उदात्त व्यवहार बुद्धि तथा नाना फडनवीस की नीतिज्ञता राजनैतिक अंतर्दृष्टि तथा मर्यादित नीति वास्तव में नाटक के विद्रोही तत्वों को शांति व शीतलता प्रदान करने में समर्थ है । मंगलमय कीर्तन से इस अंक की समाप्ति हुई है ।

इस नाटक के तीसरे अंक में कथा सूत्रों की संधि है । पेशवा माधवराव की मृत्यु तथा काका राघोबा व काकी आनन्दीबाई के षडयंत्रों का विकास इस अंक की चरम सीमा है । फलस्वरूप नवीन पेशवा नारायणराव की हत्या की गई तथा राघोबा द्वारा पेशवाई पर अधिकार करने के प्रयत्न हुए किन्तु नाना फडनवीस ने पेशवा वंश की पवित्रता की सुरक्षा में नारायणराव की विधवा पत्नी गंगाबाई के गर्भस्थ शिशु को ही पेशवा बनाने की घोषणा की । इसी पार्श्वभूमि के निर्माण में तीसरा अंक गंगा-बाई के करुणापूरित मनोविज्ञान से ही आरम्भ होता है । इसी बीच काकी आनंदीबाई द्वारा गंगाबाई की हत्या के अनेक प्रयत्न हुए किन्तु नाना फडनवीस की सूक्ष्म दृष्टि ने उनका विघटन किया । तथा स्वयं षडयंत्रकारी ही भेदी हुए । काका राघोबा तथा नाना फडनवीस के परस्पर वार्तालाप उनके चरित्र पर प्रकाश डालते हैं । नाना फडन-वीस द्वारा गंगाबाई के पुत्र को पेशवा पद की घोषणा तथा नाना की राजनीतिक सफलता के साथ ही इस नाटक की समाप्ति होती है ।

ऐतिहासिकता :--

प्रस्तुत नाटक में आद्यंत इतिहास का स्पन्दन है । वर्मा जी ने महाराष्ट्र के इतिहास तथा नाना फडनवीस संबंधी प्रसंगों का चयन कर उन्हें नाट्य शिल्प की व्यवस्था दी हैं । जिससे विवेच्य नाटक की वस्तु ऐतिहासिक परिवेश में बोलती सी प्रतीत होती है । विवेच्य नाटक के चरित्र प्रधान होने के कारण पात्रों के चरित्र को समालोकित करने

वाली घटनाओं का भी वर्णन किया है जिससे घटनाएं वस्तु की सीमा पार कर गई हैं, जो न तो चरित्र निर्माण में और न ही नाट्य शिल्प के लिए उपयोगी है । नाटककार ने नाटक की भूमिका में नाना फडनवीस से संबंधित इतिहास प्रसंगों का उल्लेख किया है, तथा उपसंहार में उनकी बाल्य कथा का उल्लेख किया है, जो नाटक में चित्रित उनके पात्रों की कथात्मक रेखाओं के लिए आधार फलक का कार्य करते हैं ।

कथावस्तु के प्रथम अंक की घटनाएं पानीपत के समीप बुराननपुर के युद्ध शिविर से सम्बन्ध रखती हैं । यह शिविर पेशवा बाजीराव का है जो २० मई १७६१ की सुनहरी सन्ध्या में अपने सामन्तों से वार्तालाप कर रहे हैं । उनके कथन का प्रारम्भिक वाक्य " राज्य श्री " का अपमान निकट की किसी अपमानजनक प्रसंग का संकेत सा प्रतीत होता है । सामन्त भास्करराव के संवाद [illegible] के अनुरूप सूक्ष्म सूक्ष्म घटनाओं का विवरण देते हैं । तदनन्तर प्रबुद्ध सदाशिवराव महाराष्ट्र भूमि के लिए घातक सिद्ध हुआ तथा अहमदशाह अब्दाली के विरुद्ध पेशवा के बढ़ते हुए व्यग्र चरणों के लिए कंटकाकीर्ण मार्ग बन गया । उसने महाराज सूरज मल तथा होल्कर को अप्रसन्न कर महाराष्ट्र की सम्मिलित शक्ति क्षीण कर दी । इतना ही नहीं दिल्ली को विजय कर आलमगीर को अपदस्थ कर समय से बहुत पूर्व पेशवा बाजीराव के पुत्र विश्वासराव को दिल्ली का सम्राट घोषित कर दिया । जिससे अवध के नवाब शुजाउद्दौला तथा अन्य मुसलमान सरदार अप्रसन्न हो गये । ब्राह्मण कुमार नाना फडनवीस भी इस समय श्रीमंत भाऊ के साथ है ।

प्रथम अंक की कथावस्तु में नाटककार ने उन समस्त परिस्थितियों की विवेचना कर दी है, जिनके कारण प्रमुख पात्रों के भविष्य आकाश पर काले मेघ उमड पडते हैं तथा महाराष्ट्र का अस्तित्व दीप सिसकने लगता है । यहां नाटककार ने परिस्थितियों के वैषम्य में संघर्षों को जन्म दिया है । तथा पात्रों को उसमें डालकर उनके चरित्र के विभिन्न पार्श्वों को उभारने की चेष्टा की है । यहीं पर लेखक ने पूर्वाभास द्वारा महा-

राष्ट्र की भवितव्यता की ओर संकेत किया है । यद्यपि हमारी सैन्य शक्ति महान है, किन्तु हृदय में अनेक प्रकार की शंकाएं सर्पों की भांति चल रही हैं । पानीपत का नाम एक फुफकार की भांति हृदय में गूंज रहा है ।[1]

" बाजीराव की मृत्यु के उपरान्त उनका पुत्र बालाजी बाजीराव पेशवा के पद पर आसीन हुआ यह नाना साहब कहलाते थे । इनके शासन में महाराष्ट्र साम्राज्य का बहुत विस्तार हुआ । राघोजी भोंसले तथा भास्कर पंडित ने उड़ीसा पर विजय प्राप्त कर ली । बंगाल से भी चौथ वसूल की जाने लगी । इस पेशवा के कार्यकाल में मराठा साम्राज्य अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया था । चम्बल से गोदावरी तक तथा अरब सागर से बंगाल की खाड़ी तक साम्राज्य की सीमाएं पहुंच चुकी थीं । इसी पेशवा के समय में मराठा साम्राज्य को ऐसा धक्का लगा था कि वह लड़खड़ा उठा था । पानीपत के क्षेत्र में सन् १७६१ में अहमदशाह अब्दाली और मराठों में जो टक्कर हुई थी उसमें मराठे हार गये थे । इस पराजय का धक्का बालाजी बाजीराव न सहन कर सके तथा शीघ्र ही उनकी मृत्यु हो गई ।"[2]

" नवम्बर के महीने में पेशवा अहमद नगर होते हुए गोदावरी की ओर चल पड़ा । दिसम्बर में वीर भयानक तथा कान खड़े कर देने वाले जनकोजी भोंसले व दस हजार सैनिकों के साथ पेशवा से आ मिला । पेशवा पूरी सेना के साथ हिन्दुस्तान की ओर चल पड़ा । जनवरी के मध्य नर्मदा को पार करते समय पेशवा को किसी साहूकार का एक कासिद मिला जो पानीपत से औरंगाबाद को पत्र पहुंचाने जा रहा था । उसी से पता लगा कि पानीपत के युद्ध में मराठों की पराजय हो गई है । पेशवा नेउसका पत्र खोलकर

---

१. नाना फडनवीस -- नाना फडनवीस -- पृ सं. ६

२. नाना साहब पेशवा -- श्री निवास बालाजी हर्डीकर -- पृ सं. ७

उस भयानक समाचार को पढ़ा - लिखा था " दो मोती गल गये बीस मोहरें लो गईं और चांदी तांबे की कुछ गणना ही नहीं ।" १

इन्हीं शब्दों से पेशवा ने सदाशिवराव तथा विश्वासराव जैसे सरदारों की मृत्यु तथा सेना के दुर्भाग्य का समाचार स्पष्ट रूप से मिल गया था । पराजित सेना के कुछ सैनिक जब पेशवा के पास पहुंचे तो उन्होंने इस समाचार की पुष्टि की । सम्पूर्ण महाराष्ट्र इस समय उदासीनता तथा निराशा के वातावरण में डूब गया था । असंख्य परिवार अपने सम्बन्धियों के विषय में जानने के लिए उत्सुक थे । पेशवा को इस भयानक पराजय का गहरा मानसिक आघात लगा जिससे वे कभी स्वस्थ न हो सके । जीवन के अन्तिम दिनों में वे पूना पहुंचे जहां उनका देहान्त हुआ ।

नाना साहब पेशवा की मृत्यु तथा पानीपत की आकस्मिक पराजय से महाराष्ट्र में एक प्रकार का विचित्र वातावरण तैयार हो गया था । सितम्बर १७६१ में पूर्व पेशवा के द्वितीय पुत्र माधवराव ने जो केवल सत्रह वर्षों का था, सतारा के राजा से पेशवाई प्राप्त की । २ वास्तव में माधवराव ने जो कुछ मराठों ने पानीपत के युद्ध में खोया था उसे प्राप्त करने की चेष्टा की । माधवराव ने जिस नीति कुशलता व बुद्धिमत्ता से महाराष्ट्र की राजनीति की बागडोर संभाली इसकी सूचना दूसरे अंक के आरम्भ में मिल जाती है । अपने ग्यारह वर्षों के शासन काल में उन्होंने समस्त महाराष्ट्र को सबल राष्ट्र की भांति संगठित किया, परन्तु अब वे शिथिल हो गये हैं तथा अस्वस्थ रहने लगे हैं । उसका विवरण द्वितीय अंक के आरम्भ में नाना फड़नवीस तथा रामशास्त्री के वार्तालाप में मिल जाता है ।

---

१. ग्राण्ट उफ लिखित मराठों का इतिहास -- पृ सं. ३६८

(अनुवादक -- कमलाकर तिवारी)

२. देखिए - परिशिष्ट -- १ उदरण ३

पानीपत के युद्ध की प्रतिक्रिया के समान ही माधवराव की मृत्यु की प्रतिक्रिया हुई । यह उसी प्रकार था जिस प्रकार एक विशाल वृक्ष को उसकी जड़ से ही काट दिया जाए । युद्ध की प्रतिक्रिया इतनी भयंकर व हृदय विदारक न थी जितनी इस राजकुमार की मृत्यु ।[1] माधव ने अपने जीवन काल में ही अपने पुत्र नारायणराव को पेशवा पद पर अभिषिक्त करने के प्रयत्न किये थे परन्तु इसी बीच माधवराव की मृत्यु हो गई तथा बीराजी को उत्तर न मिल सका ।"[2]

पेशवा माधवराव की मृत्यु के उपरान्त नारायणराव दिसम्बर के माह में सतारा पहुंचा जहां राजा ने उसे पेशवा पद ग्रहण करने की अनुमति दी, परन्तु राघोबा तथा नारायणराव में अधिक दिनों तक मतैक्य न रह सका । पेशवा की मां तथा राघोबा की पत्नी में जो विष बेल पनप चुकी थी वह मुरझाने के स्थान पर दिन दूनी रात चौगुनी पनपती गई ।

पेशवा पद के लिए मराठों का संघर्ष वस्तु का सत्य है । रघुनाथराव की महत्वाकांक्षा के हवन-कुण्ड के लिए पेशवा नारायणराव का हविष्य होना इतिहास का महत्वपूर्ण विषय है । डा. वर्मा ने स्पष्ट रूप से नारायणराव की हत्या का चित्रण नहीं किया है तथापि नाना फड़नवीस के मुख से राघोबा द्वारा नारायणराव की हत्या कराये जाने का उल्लेख मात्र है । इस घटना की सत्यता का ज्ञान ग्राण्ड डफ लिखित मराठों के इतिहास से होता है ।" जब इस कोलाहल से नारायणराव की नींद खुल गई तो न उसने छिपने का प्रयत्न किया व न अपनी रक्षा का उपाय सोचा । वह बिस्तर से उठ कर सीधे अपने चाचा के घर की तरफ दौड़ा । समरसिंह अपनी नंगी तलवार लिए उसके पीछे-पीछे दौड़ा चला आ रहा था । नारायणराव जाकर अपने चाचा से चिपक

---

१. देखिए -- परिशिष्ट - १ - उद्धरण ४

२. ,, ,, १ ,, ५

गया तथा बड़े आर्त स्वर से अपनी जान बचाने की प्रार्थना करने लगा - - - - - - - - जिस समय नारायणराव भूमि पर गिरा पड़ा था उसी समय उसका एक आश्रित चापाजी तिलेकर दौड़ता हुआ परन्तु वह पूर्ण रूप से निःशस्त्र था । उसने पेशवा की यह दशा देखी तो दोनों हाथों को उसके गले में लपेट कर नारायणराव से चिपक गया और तुळाजी पवार ने उन दोनों को एक ही तलवार के वार में काट डाला ।" १

घटना :--

प्रस्तुत घटना का उल्लेख विदेशी इतिहासकारों ने भी किया है । अगस्त १७७३ में पेशवा की सेना में असंतोष के चिह्न प्रकट होने लगे - - - - - - - - जबकि दोपहर में पेशवा अपने कमरे में आराम कर रहे थे उनके महल में एक कोलाहल सा सुनाई पड़ा जिसका नेतृत्व सुमेरसिंह कर रहा था - - - - - - - नारायणराव रक्षा के लिए अपने चाचा के कमरे में जा घुसा परन्तु षडयंत्रकारियों ने उसकी हत्या कर दी ।" २

परन्तु यह हत्या किसकी आज्ञा से हुई थी इसमें इतिहासकारों को सन्देह है । कहा जाता है कि राघोबा ने रामशास्त्री के समक्ष स्वीकार कर लिया था कि उसने नारायणराव की हत्या का आदेश षडयंत्रकारियों को नहीं दिया था, केवल उसे पकड़ने की आज्ञा दी थी । वास्तव में यह सत्य है कि राघोबा को पद लोभ था वह अपने भतीजे की हत्या कराना नहीं चाहता था ।

इस घटना के छः सप्ताह के भीतर ही रामशास्त्री ने रघुनाथराव द्वारा समरसिंह को लिखे गये मूल आदेशपत्र को प्राप्त कर लिया था । उस पत्र की प्रारम्भिक लिखावट में एक स्थान पर " धरावे " (पकड़ना) शब्द लिखा था जिसे काट कर "मारावे" (मारना) शब्द लिख दिया गया था । प्रायः सभी विश्वास करते हैं कि यह दुष्कार्य

---

१. ग्राण्ट डफ लिखित मराठों का इतिहास - पृ सं. ४५५
(अनुवादक - कमलाकर तिवारी)

२. [illegible]

राघोबा की महत्वाकांक्षी पत्नी आनन्दीबाई द्वारा किया गया था ।

पात्र :--

प्रस्तुत नाटक का पूर्ण आधार शिला नाना फडनवीस को आधार बना कर परिवेष्ठित की गई है । वास्तव में भारतीय इतिहास में नाना का नाम अविस्मरणीय है । राजनीति के क्षेत्र में नाना ने जिस सूक्ष्म दृष्टि व कूटनीति का परिचय दिया वह उस समय के शक्ति शाली सम्राटों में भी नहीं थी । अठारवी शताब्दी का भारतीय इतिहास नाना की विलक्षण बुद्धि से ही अनुशासित हुआ है । परन्तु यह दुर्भाग्य की था कि उन्हें अधिक आयु नहीं मिली । ईश्वरानुकम्पा से यदि वे अधिक समय तक जीवित रहते तो भारत का इतिहास आज दूसरा होता क्योंकि भारत में अंग्रेजों,फ्रांसिसियों व पुर्तगालियों की नीति सफल न हो पाती ।

नाना फडनवीस के ऐतिहासिक जीवन वृत को पेशवा वंश के इतिवृत के आधार पर तीन अंक के तीन भागों में विभक्त किया गया है । नाना फडनवीस का २४ फरवरी १७४२ को हुआ था । इनके पिता का नाम जनार्दन बल्लाल भानु था जो पेशवा के यहां एक कर्मचारी थे । नाना के सभी अग्रज बाल्यायु में ही चल बसे थे । अत: नाना की शिक्षा दीक्षा का उत्तरदायित्व पेशवा ने बड़े स्नेह एवं वात्सल्य से वहन किया । कुशाग्र बुद्धि के नाना शिक्षा सम्बन्धी प्रतिभा का विलक्षण परिचय बाल्य काल से ही देने लगे । धीरे: धीरे: वे पेशवा परिवार के विश्वस्त सदस्य बन गये ।

शैशव काल से ही नाना सरल स्वभाव के व्यक्ति थे । एकांत प्रियता मनन व चिन्तन उनके स्वभाव का एक अंग था । देव अर्चना तथा धार्मिक क्रियाएं उन्हें विशेष प्रिय थीं तथा युद्ध के नाम से उन्हें घृणा थी । पेशवा बाजीराव की मृत्यु के पश्चात जब पेशवा माधवराव ने राज्य की बागडोर संभाली तो उन्होंने नाना को मंत्री पद पर प्रतिष्ठित किया तथा नाना ने अपने दायित्व को अभूतपूर्व राजनैतिक योग्यता से संभाला । तत्कालीन

राजनीति में नाना का महत्वपूर्ण स्थान था । नाना की योग्यता में नाना का महत्व पूर्ण स्थान था । नाना की योग्यता को स्वीकार करते हुए जे. सलीवन ने कर्नल क्रिग्स के एक पत्र में लिखा था " हमें नाना फड़नवीस या इसी तरह का व्यक्ति दीजिए । जब हम भारत के शासकों से अपनी तुलना करते हैं तो हम दयनीय बौने ज्ञात होते हैं ।" [१] मार्च १८०० में अट्ठावन वर्ष की आयु में उनकी मृत्यु हो गई । ए. मैकडोनाल्ड ने लिखा है कि मरणोपरान्त नाना का यश इस रूप में रहा है कि अपने समय के देश के महानतम व्यक्तियों में थे । [२]

इन मुख्य पात्रों के अतिरिक्त पूरक पात्रों में रामशास्त्री, हरिपन्त फड़के भास्कर भास्करराव एवं अप्पाजी विशुद्ध ऐतिहासिक पात्र हैं, जिनकी साक्षी ग्राण्ड डफ का मराठा इतिहास देता है । केवल मनाबैन व माना काल्पनिक पात्र हैं जिनकी कल्पना राघोबा के षड्यन्त्रों को सजीव रूप रूप देने के लिए हुआ है ।

गंगाबाई स्वर्गीय पेशवा नारायणराव की पत्नी थीं । रघुनाथराव के विपक्षी दल के नेता नाना फड़नवीस ने उसकी सुरक्षा का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया था, क्योंकि वह उस समय गर्भवती थी, उस दल की यह योजना थी कि भविष्य में गंगाबाई से उत्पन्न होने वाले पुत्र को रघुनाथराव के विरोध में खड़ा किया जा सका । " मन्त्रियों ने सोच रखा था कि यदि गंगाबाई ने पुत्र को जन्म दिया तब तो कोई समस्या ही नहीं रहेगी , परन्तु यदि संयोग वश पुत्र के स्थान पर पुत्री पैदा हो गई तो उसके स्थान पर किसी नवजात लड़के को रख कर उसी को गंगाबाई का पुत्र घोषित कर दिया जाएगा ।" [३] परन्तु उसके (राघोबा) सारे सपने टूट गये जब गंगाबाई ने पुत्र को जन्म दिया जो भविष्य का सवाई माधवराव कहलाया । [४]

---

१. देखिए - परिशिष्ट - १ - के उद्धरण - ७
२ " " १ " ८
३. ग्राण्ड डफ लिखित मराठों का इतिहास- पृ. सं. ४६३ (अनुवादक-कमलाकर तिवारी)
४. देखिए - परिशिष्ट - १ - उद्धरण - ६

पार्वतीबाई विशुद्ध ऐतिहासिक पात्र है वह पानीपत के युद्ध में काम आये, सदाशिवराव की पत्नी थी । पानीपत के युद्ध से भागे हुए नाना फड़नवीस के साथ वह भी पेशवा बाजीराव के पास आयी थी । ग्राण्ड डफ का मराठा इतिहास साक्षी देता है कि गंगाबाई के साथ सदाशिवराव भाऊ की पत्नी भी रहती थी । जिसे महाराष्ट्र के लोग बहुत सम्मान की दृष्टि से देखते हैं । १

चरित्र चित्रण :--

प्रस्तुत नाटक के चरित्रों की रूप रेखा अलौकिक प्रकार है । ऐतिहासिक व्यक्तियों में जो सत्य है उसे उद्घाटित करने से ही पात्र सजीव होता है । पात्र के संस्कार व वातावरण के प्रभाव से जिस मनोविज्ञान का निर्माण होता है उसकी क्रिया व प्रतिक्रिया में पात्रगत सत्य उभरता है । जब उस सत्य में वस्तुगत कल्पना का योग होता है तो पात्र में जीवन की वास्तविकता प्रकट होती है इसी दृष्टिकोण से प्रस्तुत नाटक में चरित्रों का कार्य-कलाप निर्मित हुआ है ।

प्रस्तुत नाटक के सभी मुख्य पात्र ऐतिहासिक है तथा उनके व्यक्तित्व की रूप रेखाओं में रंग भरने में वर्मा जी पूर्णतया इतिहासकार हो गये हैं । सर्वत्र उनकी साहित्यिक कू-- तूलिका को ऐतिहासिक निर्देश मिलते गये यही कारण है कि कहीं कहीं ऐसा भासित होता है कि इतिहासकार कलाकार बन गया तथा ऐतिहासिक चरित्रों को रूप सज्जा दे रहा है । वर्मा जी ने अपने अन्य नाटकों में कल्पना से काम लिया है किन्तु विवेच्य नाटक में चरित्र की यथातथ्यता पर पूर्ण दृष्टि रखी गई है ।

प्रस्तुत नाटक में नाना का चरित्र तारागणों के मध्य ध्रुव तारे की भांति है, जिसके चारों ओर अन्य तारे परिक्रमा करते रहते हैं । उनका चरित्र देदीप्यमान है, साहस धैर्य तथा सहिष्णुता की त्रिवेणी में उन्होंने उज्ज्वलता प्राप्त की है । पानीपत की परा-

---

१. विस्तार के लिए - देखिए - ग्राण्ड डफ लिखित मराठों का इतिहास ।

अब ने नाना के मुख-मण्डल को म्लान नहीं किया अपितु आत्म विश्वास से वे और तेजोमय हो गये , वे पेशवा माधवराव से कहते हैं " उस समय तो धैर्य ही हमारा राज्य है, और साहस ही हमारा मुकुट । हमारा दुःख हमारी वीरता की ही छाया है, क्योंकि हम प्रकाश में खड़े हैं । छाया का महत्व नहीं श्रीमंत प्रकाश का महत्व है ।" १ उनके व्यक्तित्व के इस सत्यप्रेम से प्रभावित होकर ही बाजीराव ने उन्हें पुत्र का सम्मान दिया ।

नाना के विश्वास ने ही महाराष्ट्र के भविष्य ने शरण प्राप्त की तथा वह भय, चिन्ता आदि से मुक्त हो गया । महाराष्ट्र का मंगल चरण विजय से आरम्भ हुआ था तथा उसका भरत वाक्य भी उनके जीते जी ही विजय से समाप्त हुआ । नाना की हस्त रेखाओं में महाराष्ट्र का भाग्य लिखित था । असंख्या छोटी बड़ी पयस्विनियाँ जैसे रत्नाकर को अपूर्ण रहती हैं वैसे ही डा वर्मा जी ने इतर पात्रों की भाव धाराओं और विचार प्रवाहों से नाना के व्यक्तित्व को प्रौढ़ता प्रदान की । प्रत्येक अंक में पात्र बार-बार आकर उनकी स्तुति एवं प्रशंसा करते हैं, तथा उन्हें महाराष्ट्र के भाग्य निर्माता के रूप में पाते हैं । उनकी सत्ता, सखा और श्रेष्ठता अन्य पात्रों की वाणी बनी हैं । पार्वतीबाई एक स्थान पर कहती है ।" पानीपत की हार को कौन जीत में बदल सकता है, और तब मैं ध्यानावस्थित होकर मैं कह देती हूं नाना फड़नवीस " । २

जिन गुणों के आधार पर नाना ने महाराष्ट्र के महात्म्य की स्थापना की थी, नाटक में भी उस महात्म्य वैभव की रक्षा के लिए उनके चरित्र में उपयुक्त गुणों का विकास किया गया है । रघुनाथराव की दुरभिसंधियों के लिए दूरदर्शिता, गंगाबाई के विरुद्ध षड्यंत्रों को विफल करने में तुरन्त बुद्धि तथा राघोबा द्वारा बार बार फड़न-

---

१. नाना फड़नवीस - पृ.सं. २१

२. ,, ,, ,, ४०

बोल अर्थात् , मुंही लटकार व्यंग्य उड़ाने में अपार सहिष्णुता का परिचय मिलता है । इन्हीं गुणों के साथ जब निर्भिकता तथा साहसिकता की संधि हुई तो उनके कण्ठ की राजनैतिक वाणी तीक्ष्ण व स्पष्ट हो गई । " मेरी राजनीति स्वार्थ के पैरों नहीं चलती, जनता के पैरों चलती है । यदि मैं पेशवा होना चाहता, तो अपसे पहले पेशवा होता - - - - - - - - - - मैं तब फड़नवीस था, आज भी हूं और कल भी रहूंगा ।"[1]

प्रथम अंक में नाना का चारित्रिक विकास कम हो सका है, द्वितीय तथा तृतीय अंकों में उनके महत्व को कम समझा गया है । वहां वे सूक्तियों के बीच निर्लिप्त कर्मयोगी से धीर एवं आत्म चिन्तन की विह्वलता के लिए अव्याहत गति से चल रहे हैं । अन्य पात्रों द्वारा भी नाना के चारित्रिक विशेषताओं को प्रकाश में लाने की नाटककार ने चेष्टा की है, जैसे आनन्दीबाई नाना के लिए कहती है " तुम बखान दो कि पेशवा वंश तुम्हारे संकेत से बच बोल सकता है ।"[2]

राघोबा अथवा रघुनाथराव माधवराव के चाचा हैं । वे पेशवा बाजीराव की की मृत्यु के उपरान्त पेशवा बनने के लिए षड्यन्त्र आरम्भ कर देते हैं । वे धूर्त, स्वार्थी दुराचारी ,अधर्मी एवं राज्य लिप्सा में अपने भतीजे नारायणराव के हत्यारे के रूप में हमारे समक्ष आते हैं , अनीति एवं अधर्म की राह पर अग्रसर राघोबा, गंगाबाई की हत्या में असफल केवल नाना की सूक्ष्मदर्शिता एवं बुद्धिमता से हो जाते हैं ।

बालाजी बाजीराव मराठा राज्य के संस्थापक के रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत होते हैं । वे वीर, गंभीर, कुशल शासक एवं योद्धा हैं । पानीपत के भीषण युद्ध की आशंका में वे बु बुरहानपुर चले जाते हैं । उन्हें अपनी मातृभूमि से अत्याधिक प्रेम है । पानीपत के युद्ध की पराजय की उन्हें अत्यन्त मार्मिक व्यथा हुई जिसे वे अधिक समय तक न सह सके एवं परलोक सिधार गये ।

---

१. नाना फड़नवीस -- पृ सं. ८०

२ ,, ,, ,, ३५

माधवराव के चरित्र पर नाना फडनवीस तथा रामशास्त्री के वार्तालाप से प्रकाश पड़ता है । वे अपने उत्तरदायित्व के प्रति सदैव सजग रहते हैं, पूर्वजों की प्रथा का पालन करने वाले एवं उदार हृदय हैं । उनकी सत्यशीलता एवं उदारहृदयता की सीमा इससे अधिक और क्या हो सकती है कि वे काकी आनन्दीबाई एवं काका राघोबा को कूटनीतिज्ञ एवं विश्वासघाती जानते हुए भी उनका आदर एवं सम्मान करते हैं ।

आनन्दीबाई राघोबा की धर्म पत्नी हैं । वे कूटनीतिज्ञ, दूरदर्शी तथा महान षड्यंत्रकारी हैं । उन्होंने काका की राज्य लिप्सा की आग में घी का काम किया , जिससे उनकी लिप्सा भड़क उठी । वे बाह्य रूप से पृथुलाक्षिणी परिवार प्रेमी हैं । परन्तु उनकी आंतरिक प्रवृत्तियां इसके विपरीत हैं । उनकी निर्दयता का इससे अधिक और क्या प्रमाण हो सकता है कि वे नारायणराव की हत्यारिणी हैं तथा विधवा गंगाबाई की भी हत्या का प्रयत्न करती हैं, जिसमें वे दुर्भाग्य से असफल रहती हैं । नारी सुलभ प्रवृत्तियां उनमें नाम मात्र को नहीं । आनन्दीबाई अपनी जातिगत स्वार्थ प्रवृत्ति से प्रेरित होकर कूटनीति में प्रवृत्त हुई । अतः उनके चरित्र में बाह्य संज्ञा की अपेक्षा आंतरिक संज्ञा एवं द्वन्द्व अधिक हैं ।

नाना फडनवीस में युग सन्देश :--

वर्मा जी ने राज्य तन्त्र के रूप में लोकतंत्रात्मक शासन प्रणाली का स्वप्न आरोपित किया है । वे राजा को प्रजा का प्रतिनिधि मान कर चले हैं । सम्भवतः उनके इसी मत का प्रतिपादन करते हुए उनके समस्त स्वतन्त्र जनता के स्वर में शासन संविधान की घोषणा करते चलते हैं । महाराष्ट्र की राजनीति के संचालक नाना फडनवीस का अधीत मंतव्य है " यदि मैं पेशवा होना चाहता तो आपसे पहले पेशवा होता किन्तु पेशवाई उसे मिलनी चाहिए जो जनता की सेवा से पेशवाई का अधिकारी है । वर्मा जी प्रजा की शक्ति में ही राज्यसत्ता का रूप देखते हैं । जनता की शक्ति किसी भी विश्वास-

घाती के विश्व का शोषण कर सकते हैं । इस सत्य से परिचालित होकर उनके पात्र प्रजा के सम्मान को कर्तव्य समझते हैं ।

अतीत की त्रुटियों की ओर संकेत करते हुए वर्मा जी ने यह निष्कर्ष पर पहुँचे कि हमारे गुण ही हमारे दोष बन गये हैं और हमारी शक्ति ही हमारी दुर्बलता बन गई हैं । इसका कारण यह है कि हमारी धार्मिक विभूतियां विवेक का नियमन करती हैं । इस लिए विरोधी को निश्चत सम्मान दिया जाता है, शत्रु का खड्ग तोड़ा न जाकर मखमली म्यान में लौटा दिया जाता है और इस प्रकार हमारी विजय पराजय की भूमिका बन जाती है ।[1]

देश की विभाजनता व सांप्रदायिकता के प्रति वर्मा जी को आक्रोश है । अतीत भारत की पराजयमूलक परिस्थितियों का यथार्थ विवरण देते हुए वे कहते हैं "मात्र परिस्थितियों के योग से कभी कभी देश की अपार क्षति हुई है । हमारे देश के लोग सत्ता की महत्वाकांक्षी हो जाते हैं, और कोई भी व्यक्ति उनके स्वार्थ में योग देकर पंक्ति में फूट डाल देता है । [२]

उनका संकेत है स्वार्थ, अहंकार, द्वेष और मिथ्या महत्वाकांक्षा ने भारत को अनेक विपत्तियां प्रदान की है । इन विपत्तियों के रूप में देश की अखण्डता का संगीत ध्वनित हो सकता है ।

---

१. नाना फडनवीस -- पृ सं. ८०

२ ,, ,, ,, ९५

४.४ राजपूत-कालीन नाटक

४.४.१.१ मलराणा प्रताप

४.४.२.१ जौहर की ज्योति

४.४.३.१ सारंग स्वर

महाराणा प्रताप

प्रसिद्ध इतिहासकार डा. बैणीप्रसाद राजपूत संबंधी अपना मत व्यक्त करते हुए कहते हैं " विश्व की कोई भी जाति मध्यकालीन भारत के राजपूतों से अधिक गौरव-मय इतिहास अधिक वीरतापूर्ण कृत्य, मान-मर्यादा तथा आत्मा की उच्चतर भावना रखने का गर्व करने में असमर्थ है । राजपूत परम्परा पर दृष्टिपात करने से उनकी वीरता, त्याग तथा दूसरों के प्रति सम्मान की भावना के कारण मस्तक स्वयं श्रद्धा से झुक जाता है ।" मध्यकालीन भारतीय इतिहास की राजनीति में इस जाति ने महत्वपूर्ण भाग लिया था। दिल्ली के सम्राटों की साम्राज्यवादी लोलुपतापूर्ण नीति का अदम्य उत्साह तथा साहस से सामना कर अपनी मातृ-भूमि की रक्षा में अपनी जीवनाहुति दे स्वयं को अमर कर दिया ।

प्रस्तुत नाटक " महाराणा प्रताप " में मेवाड़ की वही गाथा को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया गया है । मेवाड़ का राजवंश सूर्यवंशी है । महाराज राम की परं-परा में जो वंश पल्लवित हुआ उसी में लगभग 6 ठी शताब्दी में गुहिल अथवा गुहदत्त नरेश हुए । उनके पश्चात इस वंश में दूसरा महत्वपूर्ण नाम बापा रावल का मिलता है । इन्हीं के काल में वीरों का पवित्र तीर्थ चित्तौड़ पर राजपूतों का अधिकार हुआ । इस वंश परम्परा के प्रसिद्ध नामों में, समरसिंह, रत्नसिंह, हम्मीर, कुम्भकर्ण तथा संग्रामसिंह आदि हैं । जिन्होंने आपत्तियों तथा विपदा के घनघोर अन्धकार में वंश की मर्यादा ज्योति तथा आत्म-सम्मान की धरोहर को सुरक्षित रखा ।

महाराणा प्रताप पर प्रचुर साहित्य की रचना हुई है, काव्य व उपन्यास तथा नाटक की शैली में उनके उज्ज्वल चरित्र को अनेक रूपों में प्रस्तुत किया गया है । प्रस्तुत नाटक का उद्देश्य भी यही है कि देश के इस अमर सेनानी के जीवन की इन्द्रधनुषी

आभा से पाठक व दर्शक गण परिचित हों। काव्य व उपन्यास वर्णनात्मक व विश्लेषणात्मक शैलियाँ हैं किन्तु नाटक अभिनयात्मक शैली होने के कारण दर्शकों के अधिक निकट है।

कथावस्तु :--

प्रस्तुत नाटक त्रिअंकीय है। प्रथम अंक अभिषेक पर्व है, इसमें उन सभी परिस्थितियों का आकलन किया गया है जो राजस्थान के गृह-विद्रोह के समय उपस्थित हुआ करती थीं। इन विषम परिस्थितियों में जो महान चरित्र हैं वे उसी प्रकार उभर कर सामने आ जाते हैं। जिस प्रकार काले बादलों की क्रोड़ में चन्द्रमा का उदय होता है। महाराणा प्रताप का व्यक्तित्व प्रस्तुत नाटक में उसी प्रकार विकसित हुआ है।

महाराणा उदयसिंह ने जो जगमल के अधिकार की घोषणा की थी, उसकी प्रतिक्रिया भिन्न-भिन्न पात्रों पर भिन्न भिन्न प्रकार से हुई है, परन्तु उसी प्रतिक्रिया में महाराणा प्रताप का उत्थान किस प्रकार परिस्थितियों को संतुलित करने में सफल हुआ, यही उनके व्यक्तित्व के विकास की दिशा है। उसी में उनके महापुरुषत्व का बीज निहित है।

द्वितीय अंक में मेवाड़ को व्यवस्थित करने में उनकी जो प्रेरणा व निष्ठा है उसकी रूपरेखा विविध प्रसंगों में प्रस्तुत की गई है। राजा मानसिंह की नीति राजस्थान के लिए कितनी भयानक सिद्ध हो सकती है इसका अनुमान महाराणा प्रताप के आक्रोश से परिलक्षित होता है। वस्तुत: यही वह प्रसंग है जिसमें भविष्य के युद्ध की विभिषिका प्रकट होती है। जिसका परिणाम हल्दी घाटी का इतिहास है। रंगमंच पर युद्ध की विभिषिका व सैनिकों की मारकाट को स्पष्ट नहीं किया जा सकता। अत: उसका केवल संकेत भर कर दिया गया है। किन्तु यह संकेत इतना सशक्त है कि उससे एक ओर जहां महाराणा प्रताप की संगठन शीलता का परिचय मिलता है दूसरी ओर उनकी

युद्ध नीति का कौशल भी स्पष्ट होता है । वीरता तो प्रताप का जन्मजात संस्कार है ।

तृतीय अंक में दो भावनाओं का मिश्रण है । पूर्वार्द्ध में हल्दीघाटी के युद्ध का परिणाम परिलक्षित होता है तथा उत्तरार्द्ध में मेवाड़ भूमि के लिए पुनः अभियान होता है, जब भामाशाह द्वारा चित्तौड़ की सम्पत्ति मेवाड़ को अर्पित की जाती है । महाराणा प्रताप का आत्मविश्वास कभी झुका नहीं, किन्तु मानवता के नाते उनकी संवेदनशीलता प्रत्येक स्थल पर स्पष्ट होती है ।

तीनों अंकों में कथावस्तु के अन्तर्गत ऐसे प्रसंग चुने गये हैं । जो महाराणा - प्रताप के समस्त जीवन को एक वीर साधक व महापुरुष की परिभाषा में आबद्ध कर सकें ।

ऐतिहासिकता :--

महाराणा प्रताप के पूज्य पिता महाराणा उदयसिंह अत्यन्त सामान्य नरेश थे । अपने वंश की विख्यात परंपरा तथा राणा सांगा सी वीरता उनमें न थी । उन्होंने बीस राजकुमारियों का वरण किया जिससे उन्हें पच्चीस पुत्र तथा बीस पुत्रियों की संपदा उन्हें प्राप्त हुई । इन्हीं सन्तान धनों में महाराणा प्रताप श्रेष्ठ तथा प्रतिभाशाली थे । प्रकृति का यह कौतुक है कि अत्यन्त विलासी पिता के ऐसा पुत्र उत्पन्न हुआ जिसने अपनी मातृ-भूमि की गौरव गरिमा के लिए अपने सुखों व परिवार का उत्सर्ग कर दिया ।

भारतीय राजनीति की परम्परा में सिंहासन के लिए संघर्ष अनिवार्य सा हो गया था । अतएव महाराणा प्रताप व उनके भ्राता जगमल में भी संघर्ष हुआ । क्योंकि उनके पिता अपनी प्रिय भाटी रानी से अत्यन्त प्रेम करते थे । अतएवं उन्होंने उसके पुत्र जगमल को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया । उत्तराधिकार तो ज्येष्ठ पुत्र प्रताप को मिलना था किन्तु भाटी रानी के प्रभाव के कारण जगमल को प्राप्त हुआ । कुमार जगमल उद्दण्ड व कायर था, इस लिए मेवाड़ के सामंतों ने भूतपूर्व राणा उदयसिंह की घोषणा

का तिरस्कार कर कुमार प्रताप सिंह को ही मेवाड़ का राजा घोषित किया ।प्रताप के राज्यारोहण की घटना का उल्लेख राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासकार जेम्स टाड ने इस प्रकार किया है -

" जगमल उसी समय महल में प्रविष्ट हुआ जबकि प्रताप अश्वारोहण की तैयारी कर रहा था । ठीक उसी समय ग्वालियर के भूतपूर्व राजकुमार के साथ राउत की सेना ने प्रवेश किया । प्रत्येक सरदार ने जगमल को भर्त्सित कर उससे अस्त्र समर्पण करवा लिया । उसके पश्चात प्रधान ने जगमल से कहा " आप गल्ती कर रहे थे महाराज वह गद्दी वास्तव में आपके भाई के लिए थी । उसके पश्चात अस्त्र से पृथ्वी को स्पर्श करते हुए प्रताप को मेवाड़ का शासक घोषित कर दिया । १

इस प्रकार अनेक संस्कारों के अनंतर महाराणा प्रताप सिंहासनारूढ हुए परन्तु आरम्भ से ही उनको अशान्ति व संघर्षों का सामना करना पड़ा । मुगल सम्राटों की महत्वाकांक्षाओं का लक्ष्य चित्तौड़ सदैव से रहा था । + प्रताप का भी समकालीन अकबर अत्यन्त महत्वाकांक्षी व कूटनीतिज्ञ था । उसने राजपूत जैसी तेजस्वी जाति को निर्बल करने अथवा अपने आधीन करने के लिए अनेक जाल फैलाये तथा अनेक राजपूत राजाओं को अपने दरबार में उच्च पदों पर प्रतिष्ठित किया । अनेक राजपूत राजाओं ने अकबर का सामना करने में अपने को असमर्थ पा आत्म-समर्पण में ही अपनी कुशल समझी ।आमेर के राजा भगवान दास ने अपनी बहन जोधाबाई का विवाह अकबर से कर दिया तथा भतीजे मानसिंह के लिए सात हजारी मनसबदारी प्राप्त कर अपनी भाग्यलक्ष्मी को सराहा ।

प्रताप को यह सब सहन न था । वे अपने पूर्वजों की परम्परा संपदा तथा अपनी

---

१. मूल उद्धरण के लिए देखिए - परिशिष्ट - १ - उद्धरण - ३१

+ अलाउद्दीन खिलजी ने भी पद्मिनी के लिए चित्तौड पर आक्रमण किया था ।

संस्कार जन्य प्रवृत्तियों के धनी थे इधर अकबर भी उनके आत्म सम्मान तथा जाति गौरव की मान्यता से परिचित था । अतएव उसने प्रताप को वंश में करने के लिए मानसिंह को भेजा । डूंगरपुर तथा उदयपुर को अधिकृत करने के उपरान्त मानसिंह अपनी शक्ति व प्रभुता के गर्व में प्रतापसिंह से भेंट करने के लिए कमलमीर नामक स्थान पर आया परन्तु प्रताप ने ऐसे आत्म-सम्मान हीन व्यक्ति को अतिथी सत्कार में भोजन पर आमंत्रित करने के भी उसका साक्षात्कार करना उचित न समझा । इस अपमान की सूचना ने अकबर की महत्वाकांक्षा की अग्नि में घी का काम किया । मानसिंह ने दिल्ली पहुंचकर उपरोक्त घटना की सूचना सम्राट को दे दी । वह इस अपमानजनक घटना को सुनकर अत्यन्त क्रोधित हुआ । उसे इस बात की भी आशंका हो गई कि यही विद्रोह तथा अपमान ही भविष्य में किसी विद्रोह या युद्ध की भूमि का न बन जाएं । वास्तव यही अपमान तथा विभ्रम भ्रान्ति ने भविष्य में हल्दीघाटी के युद्ध की आधार शिला कार्य किया ।[1]

राजस्थान के इतिहास में इतिहास में हल्दी घाटी के युद्ध का महत्वपूर्ण स्थान है । हल्दीघाटी भी अकबर व प्रताप के संघर्ष का परिणाम था । दंतकथा के अनुसार राणा की सेना में बीस हजार घुड़सवार व मानसिंह की सेना में अस्सी हजार थे । राजा मानसिंह तथा आसफखां की अध्यक्षता में मुगलसेना तथा प्रताप की अध्यक्षता में राजपूती सेनाओं का परस्पर युद्ध हुआ राजपूतों ने असीम उत्साह व साहस से शत्रु सेना का सामना किया, परन्तु यही समय राजपूती सेनाओं में यह समाचार फैल गया था कि अकबर भी सेना लेकर आ रहा है उससे राजपूतों का जोश मंद पड़ गया । परिणामतः राजपूतों की पराजय हुई तथा अपने सामंतों व सरदारों के साथ राणा को

---

१. मूल उद्धरण के लिए देखिए -- परिशिष्ट - १ - उद्धरण - २२

मैदान छोड़कर भागना पड़ा । +

राणा प्रताप के घोड़े चेतक की जनश्रुतियों में तथा कथाओं में अत्यन्त प्रशंसा की गई है । राजस्थान में लेखक जेम्स टाड भी कहते हैं । चेतक ने दिन भर युद्ध में प्रताप को अश्वारोहण का सुख दिया , तथा बिना किसी की सहायता के शत्रुओं से रक्षा करते हुए पहाड़ों तथा नदियों को पार कर उन्हें सुरक्षित स्थान में ले गया ।[1] चेतक की वीरता की प्रशंसा श्यामनारायण पाण्डेय ने निम्न पंक्तियों में की है :-

रण बीच चौकड़ी भर भर कर ।
चेतक बन गया निराला था ।।
राणा प्रताप के घोड़े से ।
पड़ गया हवा का पाला था ।।
जो तनिक हवा से बाग हिली ।
लेकर सवार उड़ जाता था ।।
राणा की पुतली फिरी नहीं ।
तब तक चेतक मुड़ जाता था ।।[2]

\+ अबुल फज़ल के अनुसार प्रताप का कनिष्ठ भ्राता शक्ति सिंह जो पिता उदयसिंह से रुष्ट होकर अकबर की सेना में सम्मिलित हो गया था । झाला सरदार के त्याग से प्रभावित हो प्रताप से क्षमा याचना करता है तथा प्रताप का पीछा करते हुए शत्रुओं से उनकी रक्षा करता है । चेतक यहीं मर जाता है तथा प्रताप शक्तिसिंह का घोड़ा लेकर पलायन कर जाते हैं ।

१. मूल उद्धरण के लिए देखिए - परिशिष्ट - १ उद्धरण - २३

२. हल्दीघाटी श्याम नारायण पाण्डेय - पृ. सं. १२६

प्रताप ने अपने जीवन की सुरक्षा कर अपनी मातृभूमि की स्वतन्त्रता व सुरक्षा का प्रयत्न न छोड़ा । वे अरावली के दुर्गम प्रान्तों में कष्टपूर्वक निवास करते रहे किन्तु अकबर की शरण में न आये तथा अकबर भी उनको विजय करने की महत्वाकांक्षा में सफल न हो सका । + प्रताप द्वारा अकबर को संधि-पत्र लिखने की कथा का उल्लेख मुसलमान इतिहासकारों द्वारा अकबर की प्रशंसा व प्रताप का अपमान करने की दृष्टि से किया गया है । श्याम नारायण पाण्डेय ने भी इस कथा को हल्दीघाटी में आख्यात्मक रूप दिया है । परन्तु वास्तव में वह पत्र अकबर तक पहुंचा नहीं -

सबने की भी सीमा चौकी ,
सह न पीड़ा का अन्तर ।
हा, सन्धि-पत्र लिखने को ,
वह बैठ गया आसन पर ।। [१]

चरित्र-चित्रण :-

प्रस्तुत नाटक में चरित्र चित्रण मनोवैज्ञानिक सत्य को लेकर चला है । मेवाड़ की प्रशस्त परम्परा को पुनर्स्थापित करने का एक मनोविज्ञान है तथा तत्कालीन राजनीति के तात्कालिक प्रयोगों का दूसरा मनोविज्ञान है । इस प्रकार नाटक के पात्र सहज ही दो वर्गों में विभाजित हो जाते हैं, जो दो विशिष्ट प्रकार के मनोविज्ञान से परिचालित होते हैं ।

---

१. हल्दीघाटी श्याम नारायण पाण्डेय पृ. सं. १७८

+ राजस्थान में इस सम्बन्ध में एक लोक गीत है । अकबर पथर अनेक के भूपत भेला किया ।
हाथ न लागो हेक पातल राणा प्रताप सी ।।

राजस्थानी इतिहास व राजस्थान में आज भी प्रताप को अत्यन्त गौरव व आदर से स्मरण किया जाता है । प्रस्तुत नाटक में उनका व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक व तेजस्वी है । उनकी भुजाएं जितनी तत्परता से अभयदान के निमित्त उठती हैं उतनी ही क्रियाशीलता उनमें शत्रु के संहार के लिए भी है ।+ उनका साहस अग्नि का एक ऐसा प्रदीप्त कुण्ड है जिसे विपत्तियों की मूसलाधार वर्षा भी बुझा न सकी । वास्तव में तत्कालीन राजनीति में प्रताप का देश प्रेम भी उनके लिए अभिशाप बन गया था । कर्नल टाड ने महाराणा प्रताप के संबंध में लिखा है कि अकबर की महान् आकांक्षा शासन कौशल व विपुल साधन मनस्वी महाराणा प्रताप के अदम्य वीर्य, यशस्वी साहस तथा निश्चल अध्यवसाय को शिथिल करने में नितान्त असमर्थ थे । अरावली में संभवतः कोई ही ऐसी घाटी होगी जो महाराणा प्रताप की वीरता, विजय व साहस के स्पर्श से पवित्र न हुई हो । वास्तव में उनका चरित्र समस्त देश के लिए एक गौरव प्रतीक है कि शताब्दियों तक उनकी कीर्ति किरण धूमिल न होगी ।

यह स्पष्ट है कि महाराणा प्रताप की आत्म-निष्ठा तथा परम्परागत गौरव समर्थन के लिए जो पात्र आते हैं उनमें सबसे अधिक योगदान रानी वीरमल है । ऐसा ज्ञात होता है कि जो वृत्तियाँ अन्तराल से उभर कर धरातल पर आती हैं वे जीवन की परिस्थितियों के समानान्तर होकर चलने लगती हैं । विरोधी पात्रों का मनोविज्ञान किसी स्थायी आदर्श पर आधारित न होने के कारण स्थिर नहीं रहता । परिणाम यह होता है कि दोनों प्रकार के मनोभावों के प्रत्यक्ष संघर्ष से उक्त पात्र और भी विक-

---

+ प्रस्तुत कथानक से संबंधित विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक की कहानी - विद्रोही है जिसमें प्रताप का भाई देशद्रोही बन कर अकबर की ओर युद्ध करता है, परन्तु रणस्थल का संहार व राजपूतों की देश भक्ति उसके संस्कारजन्य मातृ-भूमि प्रेम को जागृत करती हैं तथा प्रताप से क्षमा याचना करते हुए वह उनकी जीवन रक्षा कर अपनी पराजय

सित होते हैं तथा स्वार्थी से पोषित पात्रों का अवसान भी आता है । इस प्रकार प्रस्तुत नाटक के चरित्रों के सौन्दर्य का एक तुलनात्मक दृष्टिकोण उपस्थित हो जाता है , जब पात्रों के समस्त गुणों चरित्र चित्रण का कौशल तभी स्पष्ट होता है जब पात्रों के समस्त गुणों का अभिव्यंजन उनके संस्कार तथा प्रभाव में सम्भव हो सके । इस तथ्य पर प्रस्तुत नाटक के सभी पात्रों का चरित्र पूर्णतया सफल है । प्रत्येक पात्र अपने संस्कारों को अपने मन में लिए रहता है । परिस्थितियां जब उनमें सम्पर्क अथवा संघर्ष में आती है, जब तब उनके प्रभाव से संस्कार स्थिर रहते हैं अथवा परिवर्तन हो जाते हैं । यही पात्र के स्वभाव के निर्धारण में सहायक तत्व है तथा इसी तत्व के आधार पर चरित्र चित्रण का सौन्दर्य है । इसी कसौटी पर यदि अकबर तथा मानसिंह तथा प्रताप व रानी बीरम का चरित्र परखा जाये तो उनके वास्तविक स्वभाव के सम्बन्ध में यथार्थ तत्वों का ज्ञान हो सकता है ।

संवाद :--

संवाद नाटक के मनोभावों की अभिव्यक्ति का एकमात्र माध्यम है । कथानक व चरित्र दोनों के स्पष्टीकरण में संवाद की व्यवस्था है । वह जितना मनोरंजक होगा । उतना ही नाटक का अनुरंजनकारी रूप सफल होगा । इस लिए संवाद में हास्य और व्यंग्य का प्रमुख उत्थान है ।

भाषा :-

प्रस्तुत नाटक के सभी पात्र अपने स्वभाव के अनुसार भाषा का प्रयोग करते हैं । नाटक में जहां शुद्ध हिन्दी के संवाद परिलक्षित होते हैं वहां उर्दू मिश्रित संवाद भी दृष्टव्य है । स्वभाव व व्यक्तित्वानुसार भाषा का प्रयोग होने से जहां मनोभावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है वहां पात्रों के व्यक्तित्व की भी सुरक्षा हुई है ।

उद्देश्य :--

प्रस्तुत नाटक का उद्देश्य प्रातः स्मरणीय महाराणा प्रताप के उज्ज्वल व पराक्रमी व्यक्तित्व का उद्घाटन करना तो है ही, साथ ही भारत के नैतिक आदर्शों की रक्षा तथा मातृ-भूमि के लिए सर्वस्व उत्सर्ग करने की प्रेरणा भी है । वर्तमान युग में समाज व व्यक्ति में कुंठाएं ने स्थान कर लिया है । स्वार्थ व लिप्सा ने मानव चरित्र हीन ग्रन्थियाँ उत्पन्न कर ही रखा है । राष्ट्रीयता की दृष्टि धूमिल हो गई है । मर्यादा व अनुशासन परिहास के पर्याप्त पर्याय बन गये हैं । तब इन समस्त विषमताओं में प्रताप का चरित्र प्रेरणा प्रदान करेगा इसमें संदेह नहीं । वर्तमान समाज में जीवन साहित्य के प्रति आस्था मिटती जा रही है क्योंकि मानव में अर्थ की प्रवृत्ति का विकास हो गया है । तब इतिहास से परिचित जीवनियां ही हमारी संकुचितजन्य भावनाओं को जागृत कर सकती हैं । इस दृष्टि से प्रताप का चरित्र अत्यन्त प्रभावशाली एवं महान है ।

" जौहर की ज्योति "

नि:सन्देह भारतीय जन-जीवन को राष्ट्रीयता व देश-प्रेम का सन्देश देने में राजस्थान की प्रेरणा अधिक रही है । पश्चिमी सीमा से लगा होने के कारण विदेशी आक्रमणकारियों ने उस पर अधिकाधिक आक्रमण किये तथा दक्षिण द्वार को उन्होंने अपनी विजय का राजमार्ग समझा निरन्तर आक्रमणों का परिणाम यह हुआ कि राजस्थान में एक ऐसा वर्ग स्थापित हो गया जो विदेशी आक्रमणों को रोकने तथा संघर्ष लेने को अपने जीवन का एक आवश्यक अंग समझने लगा, जिसके लिए वह निरन्तर सन्नध व कटिबद्ध रहने लगा । भौगोलिक परिस्थितियों ने भी इनकी इस भावना में सहायता पहुंचाई । ऊंचे-ऊंचे पर्वत खण्ड, घाटियों व वनों में अनेक दुर्गों ने रक्षा स्थलों तथा आक्रमणों को रोकने के लिए गुप्त स्थानों का कार्य किया । राजस्थान जहां अनेकानेक राजवंशों का केन्द्र है वहां प्रत्येक समय युद्धों तथा संघर्षों की रक्त रंजित भूमि भी रहा है ।

राजवंशों की गौरव सुरक्षा में अनेक वीरों ने युद्धों में लड़कर विजय प्राप्त की तथा विजय प्राप्त करने में यदि कठिनाई हुई तो युद्ध में स्वयं अपनी बलि देकर स्वयं को गौरवशाली व सौभाग्यशाली समझा । इस भांति राजस्थान में क्षत्रियों की इस जाति में की एक ऐसी परम्परा चल पड़ी जो अपने को राजपूत कहते तथा राज्य व मातृ-भूमि की स्वतन्त्रता के लिए मरण को भी एक पर्व समझने लगी ।

राजस्थान में अनेक राजवंश हुए जिनकी कीर्ति गाथा से प्यारे देश का इतिहास स्वर्णाक्षरों में लिखा जा सकता है । न केवल राजपूत वीरों ने अपितु राजपूत रमणियों ने या तो कृपाण लेकर युद्धों में शत्रुओं से युद्ध किया या अपनी मर्यादा की रक्षा के लिए अपने आपको अग्नि की लपटों में समर्पित कर " जौहर पर्व " से राजस्थान का इतिहास अनंत काल तक गौरव की कभी कान्ति से देदीप्यमान रहेगा ।

ऐतिहासिकता :--

प्रस्तुत नाटक सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से आरम्भ होता है जब मुगलवंश के अन्तिम सम्राट आलमगीर औरंगजेब ने अपनी शक्ति मारवाड़ के तेज व शक्ति से तौलनी चाही । अकबर जहांगीर तथा शाहजहां ने तो राजपूतों को अपनी सेना में महत्वपूर्ण पद देकर मुगल साम्राज्य को जैसे एक कवच पहना दिया था । परन्तु औरंगज़ेब ने उस कवच को तोड़ कर अपने एकांकी बाहुबल पर विरोधी तत्वों पर विजय प्राप्त करने की चेष्टा की । अपनी इसी प्रवृत्ति के कारण मारवाड़ तथा मेवाड़ जैसे शक्तिशाली व निर्भीक राज्यों को उसने अपना शत्रु बना लिया था । हिन्दू जनता पर " जजियाकर " लगा कर उनके विदेश विरोध व अविश्वास की अग्नि को प्रज्ज्वलित कर दी थी ।

इतिहासकारों ने स्पष्ट लिखा है कि औरंगजेब किसी पर भी विश्वास नहीं करता था, सम्भवत: यही कारण था कि उसने अपने पुत्रों को सुदूर प्रान्तों का प्रबन्ध करने के लिए राजधानी से अलग हटा दिया था । इस्लाम का प्रचार करने के लिए उसने अन्य धर्मों को उसने सम्पूर्ण रूप से नष्ट करने का व्रत ही ले लिया था । किन्तु ऐसा सम्भव न हो सका तथा उसकी मृत्यु के पश्चात ही मुगल साम्राज्य का अन्त हो गया था ।

मारवाड़ के शक्तिशाली नरेश महाराज जसवंतसिंह से औरंगजेब को सदैव शंका बनी रहती थी कि उनके नेतृत्व में कहीं कोई ऐसा विद्रोह न खड़ा हो जाय जिसे मुगल साम्राज्य की सेनाएं भी न दबा पाएं । अतएव जब पश्चिमोत्तर सीमा प्रदेश में विद्रोह हुआ तो आलमगीर ने जसवन्त सिंह को काबुल भेज दिया । औरंगजेब के सौभाग्य एवं मारवाड़ के दुर्भाग्य से अफगानिस्तान के संग्राम स्थल से लौटते समय राजा जसवन्तसिंह की खैबर की घाटी में मृत्यु हो गई । + उस समय उनके कोई पुत्र न था केवल एक भतीजा था जिसे उत्तराधिकारी न स्वीकार किया गया ।

+

मुगल सम्राट की इस अन्यायपूर्ण नीति से राजपूतों में आत्म सम्मान की रक्षा के लिए ओजस्वी भाव जाग्रत हो गये । इस जोश को जसवन्तसिंह की पत्नी से अजीतसिंह नामक पुत्र होने और भी अधिक उत्तेजना मिली । राजपूतों ने एक बार फिर अजीतसिंह को उत्तराधिकारी मान लेने की प्रार्थना की किन्तु सम्राट ने अनसुनी कर दी ।

मुगल सम्राट के ऐसे भयानक विचारों से राठौर वंश सशंकित हो गया ।उन्होंने अपने प्राणों की बाजी लगाकर अजीतसिंह को बचाने की चेष्टा की । ज्यों ही औरंगजेब ने अजीतसिंह को अपने अधिकार में करने की योजना को कार्यान्वित किया राजपूतों ने रानी तथा राजकुमार सहित मारवाड़ की ओर प्रस्थान किया । इस कार्य में दुर्गादास का अद्वितीय योगदान था । मुगलों की साम्राज्यवादी नीति पर शंका कर साहसी दुर्गादास रानी व अजीतसिंह को पुरुष वेश में लेकर मारवाड़ की ओर भाग गये । [१]

दुर्गादास का जीवन बाल्य-काल से ही चरित्र की पवित्रता, उत्कृष्ट विचारों एवं कर्मण्यता के लिए प्रसिद्ध रहा था । वह विरला ही राजपूत था, जिसमें शौर्य तथा निर्भीकता के साथ, कार्य कुशलता, बुद्धिमत्ता तथा दूरदर्शिता का अद्भुत सामंजस्य था । दुर्गादास जसवन्तसिंह के अनेक सामंतों में से एक का पुत्र था, जिसने महाराणा के कुल दीपक की रक्षा का कार्य कर अपनी स्वामी भक्ति का परिचय दिया । प्रसिद्ध इतिहास कार यदुनाथ सरकार ने दुर्गादास के चरित्र की प्रशंसा निम्न शब्दों में की है ।" उसमें

---

१. जसवन्तसिंह की मृत्यु की विषय में ऐसा स्वीकार किया जाता था कि उनकी मृत्यु में आलमगीर औरंगजेब का षड्यन्त्र था ।दिजेन्द्रलाल राय के नाटक दुर्गादास का एक पात्र समरसिंह कहता है - सोधी भाषा में कहिये कि बाप जसवंतसिंह का सर्वनाश करना चाहते हैं, उनकी जिस तरह हत्या कराई है,उनके बड़े लड़के पृथ्वीसिंह को मार डाला है -- दुर्गादास (हिन्दी अनुवाद) द्विजेन्द्रलालराय - पृ सं.३

१. मूल उद्धरण के लिए - देखिए - परिशिष्ट - १ - उद्धरण - २४

अतिशयोक्ति नहीं , भाटों ने सदैव दुर्गादास की प्रशंसा के गीत गाये तथा राजपूत माता सदैव यही प्रार्थना करती है कि उसे दुर्गादास जैसा पुत्र प्राप्त हो, क्योंकि वास्तव में वही एक ऐसा वीर था जिसने मुगलों की सी शक्ति, कूटनीति, संगठन शक्ति व असीम साहस का परिचय दिया था । १

दुर्गादास ने जिस मारवाड़ वंश की रक्षा के लिए उपाय रचे, अपनी बुद्धि व शक्ति का परिचय दिया वह इस नाटक का मुख्य विषय है । वास्तव में देखा जाय तो दुर्गादास के कार्य कलाप हमें महाराणा प्रताप की याद दिलाते हैं । प्रताप ने जिस प्रकार मेवाड़ की रक्षा की उसी प्रकार दुर्गादास ने मारवाड़ की । प्रताप एक नरेश थे तथा दुर्गादास नाम मात्र का एक सरदार ही था । महाराणा प्रताप ने जहां आत्म-सम्मान व कष्ट सहने की कसौटी पर कसकर अपनी राष्ट्रीयता की पताका को फहराया वहां राठौर दुर्गादास ने आत्म विश्वास तथा साहस की अग्नि की लपटों में स्वतन्त्रता की ध्वजा को फहराया । अन्तर यह भी था कि अकबर राजपूतों के प्रति किसी सीमा तक सहिष्णु था किन्तु औरंगज़ेब काफिरों के लिए कठोर व निर्दय था । ऐसी स्थिति में दुर्गादास का मुगलों से लोहा लेना जान बूझकर आग में हाथ डालना था ।

प्रस्तुत नाटक का द्वितीय पहलू औरंगज़ेब के पुत्र अकबर का राजपूतों को साथ देना है । शहज़ादा अकबर अपने पिता की युद्धनीति व उसकी [illegible] से तंग आ चुका था । जब उसे अपने पिता द्वारा राजपूतों से विरुद्ध युद्ध करने के लिए भेजा गया तो वह उनकी युद्ध नीति से अत्यधिक प्रभावित हुआ । राजपूतों की [illegible] अकबर ने स्वीकार कर लिया कि उसे अपने पिता को [illegible] । [illegible] स्वयं अब वह सम्राट है । [illegible] [illegible]

---

१. दैनिक - परिशिष्ट - [illegible]

कराई कि औरंगजेब ने अपने कुकृत्यों से बादशाहत के अधिकार को खो दिया है । उसके अनंतर वह प्रकट रूप से राजपूतों से मिलकर राजधानी पर आक्रमण की तैयारी करने लगा ।

युद्ध स्थल में औरंगजेब की स्थिति अत्यन्त डांवाडोल थी । परन्तु उसने कूट-नीति व चतुरता से काम किया । उसने झूठे पत्र जिनसे द्वारा यह सिद्ध होता था कि अंत: अकबर अपने पिता का साथ देकर राजपूतों से विश्वासघात कर रहा है, राजपूतों के शिविर के चारों ओर डलवा दिये । औरंगजेब की योजनानुसार वह पत्र दुर्गादास के हाथों में पड़ गया तथा वह स्पष्टीकरण के लिए अकबर के शिविर में गया ।[1] परन्तु उस समय अकबर सो रहा था । इस दुसंयोग से राजपूतों को यह विश्वास हो गया कि अकबर ने उनके साथ विश्वासघात किया है । अत: वे रात में ही अकबर को संकटमयी स्थिति में छोड़ कर भाग निकले । प्रात:काल अकबर को वास्तविकता का ज्ञान हुआ ।

इतिहास साक्षी देता है कि अपने विद्रोह में असफल होने पर अकबर ने संभाजी के यहां शरण ली थी । अकबर के लिए चारों ओर के रास्ते बन्द हो गये थे । अतएवं वह पश्चिमी सीमा प्रान्त से होता हुआ खानदेश तथा बालखाना होता हुआ अन्त में शम्भाजी के दरबार पायगढ आया ।[2]

---

१. मूल उद्धरण के लिए - देखिए - परिशिष्ट - १ - उद्धरण - २६
प्रस्तुत घटना का वर्णन डी.एल राय ने भी अपने नाटक `दुर्गादास` में किया है । परन्तु जिस समय यह घटना घटित हुई उस समय दुर्गादास घटनास्थल पर नहीं रहता है । डा. वर्मा के इस प्रकार के घटना चित्रण से दुर्गादास के चरित्र की ज्योति मंद पड़ जाती है , क्योंकि वह औरंगजेब की चाल को न भांप सका । द्विजेन्द्रलाल राय ने दुर्गादास को इस दोष से मुक्त कर दिया है ।

२. देखिए - परिशिष्ट - १ - उद्धरण - २७

परन्तु वर्मा जी के प्रस्तुत नाटक में अकबर दुर्गादास के समक्ष शरणागत के रूप में आता है तथा अपनी पत्नी व पुत्री को छोड़ कर वह ईरान की राह लेता है। औरंगजेब ने १६६४ में दुर्गादास से अकबर की पुत्री सफीयत उन्निसा को वापस मांगा था। प्रसिद्ध इतिहासकार जदुनाथ सरकार ने भी इस घटना का वर्णन किया है। औरंगजेब अकबर की पुत्री सफीयत-उन्निसा को वापिस लेने के लिए अत्यन्त उत्सुक था। जिसे उसके पिता के पलायन के बाद राठौरों ने शरण दी थी। यह बातचीत एक बार प्रारंभ होकर रुक गई थी जिसे १६६४ में पुनः प्रारम्भ किया गया।[१]

अन्त में दुर्गादास ने सफीयत को औरंगजेब को सौंप भी दिया था। उपयुक्त विवरण से ज्ञात होता है कि सफीयत दुर्गादास के पास तेरह वर्षों तक रही उसी समय अजवन्तसिंह का पुत्र अजीतसिंह भी मेवाड़ में रहा। यही नाटककार की कल्पना ने चमत्कार दिखाया है। दोनों में परस्पर अनेक वर्षों के साथ रहने से प्रेम हो गया होगा, उसी प्रेम का कलात्मक चित्रण नाटक में किया है।[+] यह भी सम्भव है कि वर्मा जी ने अपने आदर्शवाद को ध्वनित करने के लिए इस प्रणय की कल्पना की हो तथा प्रकारान्तर उसे भाई-बहन के प्रेम में परिवर्तित कर दिया हो। नाटक में दुर्गादास ने सफीयत को इस्लाम धर्म मानने की सुविधा दी है। इतिहास भी कहता है। परन्तु बेगम ने औरंगजेब को सूचित किया कि दुर्गादास ने उसका इतना सम्मान किया कि अजमेर से एक मुस्लिम शिक्षिका को बुलवाया जिसके शिष्यत्व में उसको कुरान पढ़ाया था जो अभी तक उसे याद है।[२]

---

१. देखिए - परिशिष्ट - १ - उद्धरण - २८

द्विजेन्द्रलाल राय ने भी औरंगजेब की पौत्री से अजीतसिंह के प्रणय की कल्पना की है तथा उसका नाम रजिया दिया है।

२. देखिए - परिशिष्ट - १ - उद्धरण - २९

भारतीयता के प्रति अत्याधिक मोह होने के कारण वर्मा जी ने अभारतीय पात्रों का भी भारतीय करण किया है । उनके हृदय में हिन्दू संस्कृति व हिन्दू धर्म के प्रति गहन आस्था की प्रतिष्ठा थी । मुस्लिम जाति भारत में रहकर भी साधारणत: अभारतीय रहती है तथा उनमें भारत भूमि के प्रति ममत्व नहीं रहता । लेकिन नाटककार की सफीयत कुछ भिन्न प्रकृति बनी है । वह उस धरातल पर खड़ी है जिस धरातल पर प्रसाद की कार्नेलिया + डा. वर्मा की सफीयत का कथन है --

" तुलसी की पूजा में मुझे आनन्द आता है - - - - - जब मैं तुलसी की पूजा करती हूं तो मुझे मालूम होता है कि तुलसी मुझ पर प्रसन्न है । मंजरियों में रोमांच की तरह उठे हुए छोटे छोटे फूल जैसे आशीर्वाद देने के लिए जैसे ढंढल से सिर निकाल कर बाहर झुक आये हैं । [१]

अपनी संस्कृति के प्रति असीम अनुराग व अपनत्व होने के कारण वर्मा जी वस्तु प्रसार एवं चरित्र संविधान, इन दोनों के माध्यम से उसके अन्तर्तत्वों को मुखर करते हैं । यही भारतीय संस्कृति की मूल भूत एकत्व का परिणाम है ।

चरित्र-चित्रण :--

चरित्रों के चरित्रांकन में वंशगत संस्कार और परिस्थितियों के प्रभावों से ही अन्तर्द्वन्द की परिस्थितियों के प्रसंग आ गये हैं । इनके द्वारा दुर्गादास श्री माया, अजीत-सिंह तथा सफीयत के चरित्र विशेष रूप से विकसित हो सके हैं । सफीयत में हिन्दू-माता से उत्पन्न होने के कारण हिन्दू संस्कार जन्मजात है, तथा पिता की अनुपस्थिति

+ प्रसाद के चन्द्रगुप्त की नायिका कार्नेलिया भी विदेशी होने पर भारतीय संस्कृति, सभ्यता व संगीत से प्रेम करती है ।

१. जौहर की ज्योति -- डा. रामकुमार वर्मा -- पृ. सं. ४६

में दुर्गादास के निरीक्षण में उन अंकुरों को पल्लवित व पुष्पित होने के अवकाश मिला है। संवादों ने उन चरित्रों एवं स्वभाव की भंगिमाओं को स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

उद्देश्य :--

प्रस्तुत नाटक का उद्देश्य सत्रहवीं शताब्दी के भारतीय इतिहास का उज्जवल पृष्ठ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करना है। जहां से पाठकों व दर्शकों को ऐसी सुदृढ़ रूप रेखा प्राप्त हो सके जो उनके आत्म सम्मान तथा राष्ट्रीयता की भावना को जागृत कर सके।

सारंग - स्वर

डा.वर्मा की नवीनतम कृति " सारंग स्वर " का गुंजार माण्डवगढ के पतन का करुण संगीत है । माण्डवगढ के सुलतान बाज बहादुर तथा रानी रूपमती के अद्भुत प्रेम कथा का पर्यवसान इस नाटक के पृष्ठों पर अंकित किया गया है । सामाजिक नाटक कार की अपेक्षा ऐतिहासिक नाटककार को नाटक प्रणयन में अधिक सतर्क रहना पडता है क्योंकि उसे इतिहास के मूलभूत तथ्यों की रक्षा करते हुए इतिहास की आत्मा को सुरक्षित कर पाठक को इतिहास व मनोरंजन के रसा प्रेम से आल्हादित करना होता है । अन्यथा कोई सहृदय पाठक नीरस इतिहास से साधारणीकरण करना न चाहेगा । द्रष्टव्य यह है कि ऐतिहासिक नाटककार को इतिहास व कल्पना में उचित सामंजस्य स्थापित कर आधुनिकता के कलेवर में इतिहास की आत्मा को सुरक्षित करना पड़ता है । प्रस्तुत नाटक " सारंग स्वर " इतिहास व कल्पना के समन्वय का प्रत्यक्ष उदाहरण है ।

प्रस्तुत नाटक में कला कर्तव्यका अद्भुत समन्वय हुआ है । कला को हम पांच रूपों में साधना करते पाते हैं । वास्तु कला, मूर्ति कला, चित्र कला ,संगीत कला व काव्य कला । प्रस्तुत नाटक में अन्य कलाओं के अतिरिक्त संगीत कला अपनी चरम सीमा पर पहुंची है । नाटक की नायिका रूपमती जहां पातिव्रत्य धर्म पर अपना बलिदान कर भारतीय नारी के कर्तव्य को पूरा करती है वहां वह अपने विषादपूर्ण क्षणों में संगीत-साधना द्वारा मन को शान्ति खोजती है ।

बाजबहादुर व रूपमती का तत्कालीन वातावरण संगीत से ओत प्रोत था । दोनों का संगीत प्रेम भारतीय प्रेम कथाओं तथा आंचलिक लोककथाओं में प्रसिद्ध है । उत्तर भारत में जहां संगीत सम्राट तानसेन अकबर के दरबार के माध्यम से संगीतकार को गुना

कर रहा था । वही संगीत प्रतिध्वनित होकर विन्ध्य पर्वत के अंचल में बसे माण्डवगढ में सुलतान बाजबहादुर तथा रानी रूपमती के कण्ठों से उभर रहा था ।

कला की साधना में माण्डव के प्राकृतिक सौन्दर्य में बाजबहादुर व रूपमती के प्रेम सौन्दर्य की छटा वैसी ही परिलक्षित होती है जैसे किसी जौहरी ने स्वर्ण मुद्रिका में माणिक रत्न विभूषित कर दिया है । मानव भावों की अभिव्यक्ति में प्राकृतिक उपादानों का योगदान वरीय व अक्षुण्ण माना जाता है । इसी तथ्य का आरोपण बाजबहादुर व रूपमती के लिए किया जाता है । यही कारण है कला व कलाकार दोनों की अविस्मरणीय घटनाओं ने माण्डवगढ की पार्श्वभूमि को ही अपना क्रीडा प्रागण बना नाया ।

ऐतिहासिकता :--

माण्डव गढ़ अपने हृदय में अनेक शासक गणों के उदय व अवसान की रोमांच एवं रोदनमयी गाथा को अपनी थाती के समान अपने हृदय से लगाये बैठा है । माण्डव गढ के प्राकृतिक परिवेश का सौन्दर्य किसी अप्रितीय रूपवती सुन्दरी के समान किसी भी शासक के हृदय में उस पर अधिकार कर लेने की लालसा उत्पन्न करता रहा । माण्डवगढ़ के प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध में प्रामाणिक सामग्री के उपलब्ध होने के अभाव में भी जो ऐतिहासिक तथ्य उपलब्ध होते हैं , उनसे हम यह निश्चित कर पाते हैं कि माण्ड-वगढपहले कन्नौज के गुर्जरों के अधिकार में था । उनके पतनोपरान्त परमारों के शासन-काल का वैभव माण्डवगढ ने देखा जिनकी साक्षी आज भी " मुंजताल " देता है । इस वंश में भारत प्रसिद्ध विद्वान तथा कुशल राजनीतिज्ञ राजा भोज ने १०१० से १०५५ तक शासन किया तथा माण्डवगढ में प्राचीर का निर्माण कराया ।

तेरहवीं शताब्दी में माण्डवगढ में मुसलमानों का प्रवेश हुआ । अलाउद्दीन के नृशंस आक्रमण से माण्डवगढ की शोभा बहुत कुछ नष्ट हो चुकी थी तथा उसकी स्वतंत्रता

परतंत्रता से आबद्ध हो निरंतर अश्रुधारा प्रवाहित कर रही थी । इस समय से १५४२ तक माण्डव की विशाल वनस्थली को मुगल आक्रमणकारियों ने अपने परों तले रौंदा ।

प्रस्तुत नाटक का नायक बाजबहादुर ऐतिहासिक व्यक्तित्व सम्पन्न व्यक्ति है । इसके पिता के मृत्यु के पश्चात् वह मौलिक बायजीद अथवा इतिहास प्रसिद्ध बाज-बहादुर मालवा का शासक बना । [१] बाजबहादुर का शासनकाल केवल ५: वर्षों का था। अपने शासन काल में इसने गोंडवाने की रानी दुर्गावती पर आक्रमण किया परन्तु इसकी पराजय हुई । अपनी इस हानि, तथा तज्जनित अपमान से मुक्ति पाने के लिए उसने विलासता की शरण ली तथा संगीत की लहरों में अपने अवसाद को भुलाने का प्रयत्न किया । [२]

१५६१ में अकबर ने माहम अंका के पुत्र आधम खां, पीर मोहम्मद तथा अन्य सेनानायकों को मालवा विजय के लिए भेजा । जब सेना सारंग पुरतक पहुंच गई तब बाज-बहादुर की तन्द्रा टूटी । युद्ध में बाजबहादुर हार गया तथा खानदेश की ओर भागा । [३]

रूपमती के आस्तित्व का आभास इतिहास देता है परन्तु फिर भी इतिहास कारों के उसके सम्बन्ध में विभिन्न मत हैं । फरिस्ता के अनुसार वह एक वेश्या थी जो बाजबहादुर के दरबार में नृत्य के लिए आई थी । दोनों के परस्पर आकर्षण से विवाह संबंध में आबद्ध हो गये । आईने अकबरी का लेखक निजामुद्दीन उसे एक ठाकुर पुत्री घोषित करता है । जब बाजबहादुर जंगल में शिकार खेलने गया तब उसने वहां रूपमती को देखा ।

---

१. मूल उद्धरण के लिए देखिए - परिशिष्ट - १ - उद्धरण - ३६

२. ,, ,, ,, १ ,, ३७

३. ,, ,, ,, १ ,, ३८

वास्तव में उसने नृत्यगान से बाजबहादुर को मोहित कर लिया । बाजबहादुर ने रूपमती के पिता के पास विवाह प्रस्ताव भेजा जिसका परिणाम पाणिग्रहण में परिवर्तित हुआ।[1]

चरित्र-चित्रण :--

लोक-कथाओं की इन समस्त कथाओं के आधार पर प्रस्तुत नाटक में रूपमती का चरित्र चित्रण हुआ है । यद्यपि कथावस्तु को संक्षिप्त करने से केवल दो अंकों में उसका अवतरण हुआ है तथापि उसके समस्त आरोहों अवरोहों का संकेत संवादों के द्वारा व्यक्त हो सका है । करुणा की अन्तिम सीमा पर उसके हृदय में क्षत्राणी भाव का उदय होता है कि वह आधम खां पर बाण संधान कर सकती है किन्तु उसकी नैतिक मर्यादा उसे छल नहीं करने देती है । नाटक में भवभूति के प्रिय करुण रस की ही मान्यता को स्वीकार किया गया है । यही कारण है कि रूपमती का मरण शत्रु के हृदय से भी चीत्कार निकलवाने की शक्ति रखता है ।

प्रस्तुत नाटक में बाजबहादुर का चरित्र विकसित न हो सका है । वह शक्ति की साधना में कभी सफल न हुआ । पहली बार वह दुर्गावती से पराजित हो जाता है दूसरी बार आधमखां से पराजित हो जाता है । वस्तुत: सुलतान होने के कारण वह सदैव दम्भ का प्रदर्शन करता है । वस्तुत: नाटक में उसको भीरु शंकाग्रस्त व कायर ही चित्रित किया गया है जो एक सूखे वृक्ष को भी देखकर भयभीत हो जाता है तथा उससे युद्ध करने की अपेक्षा स्वयं आत्म-हत्या करने की सोचता है । वह रूपमती का ही प्रेम था जिसने बाज को बहादुर बना दिया था । वास्तव में बाज बहादुर एक ऐसा पौधा था जिसे पल्ल पल्लवित व पुष्पित होने के लिए सदैव एक लकड़ी की आवश्यकता होती थी ।

---

१. विस्तार के लिए देखिए -- " आईने अकबरी " ।

आधमखां में सिपहसालार का पूरा व्यक्तित्व है। माण्डवगढ जीतने पर ही वह अपने को सुलतान कहने लगता है। वह छद्मवेशी व नीतिज्ञ है। वह कूटनीतिज्ञ है, जो छिपकर शत्रु का भेद लेता है तथा शत्रु को शतरंज के मोहरे की तरह हर चाल में शह देता हैं। यद्यपि वह मर्यादा प्रिय है किन्तु विलास के क्षणों में वह अपने अस्तित्व को भूल जाता है। उसका सम्भाषण आतंकित कर देता है किन्तु चाटुकारों की चाटुकारिता स्मितहास्य से सुन लेता है। उसकी प्रत्येक क्रिया तथा भंगिमा में अभिमान व अहंकार स्पष्ट झलकता है।

रानी रूपमती के गुरु शेख उमर का स्वाभिमान चरम सीमा को छूने लगता है। एक ओर शत्रु के लिए ~~कठोर~~ वह छोटों के लिए वात्सल्यपूर्ण है दूसरी ओर शत्रु के लिए कठोर व निर्भीक हैं। विषम स्थितियों में वे दु:खी व क्षुब्ध भी हो जाते हैं। वृद्ध होने पर भी उनका स्वर किसी सैनिक की ललकार से कम नहीं। किसी के परिहास एवं व्यंग्य को वे सह नहीं सकते। यहां तक कि बाप की विवशता तथा वृद्धावस्था की निर्बलता के कारण अपमान न सहन करने पर वह अपनी जीवन लीला ही समाप्त कर देते हैं।

पूरक पात्रों में जहां विजनसिंह स्वामिभक्त राजपूत सरदार है वहां पीर मुहम्मद खां तथा नसुरुल्ला खां चाटुकार हैं। उनमें भी नसुरुल्ला खां की चाटुकारिता हास्य की सीमा को स्पर्श करने लगती है।

स्त्री- पात्रों में रैना श्यामा मंजरी तथा प्रभाती अपनी स्वामिनी रूपमती की सेवामें निरंतर प्रयत्नशील हैं। उनमें साहस निर्भीकता तथा कर्तव्य निष्ठा प्रत्येक स्थिति में दृष्टव्य है।

संवाद :--

प्रस्तुत नाटक में संवाद मनोविज्ञान से प्रेरित है। क्रिया तथा प्रतिक्रिया की सीमा संवाद की गति निर्धारित करती है। एक ही पात्र जब करुणा के स्वर में बोलता

है तो उसका स्वर शिथिल हो जाता है वही जब उत्साह में बोलता है तो गगन भेदी नाद करता है --

आदम खां " अब्दुल्ला खां । इसी वक्त से मांडोगढ में जश्न की तैयारियां शुरू हो जाएं । आज सुलतान आज़म आदम खां मुहब्बत के मुल्क में बादशाह है । तुम लोग जाओ । हमें इस जोश में अकेले ही खुशी का ज़ाम पीने दो । " सारंग स्वर "

आदम खां " - - - - - - - - यह जहर का शीशा । रूपमती तुमने जहर पी लिया । यह क्या किया । रूपमती । तुम इतनी पारसा हो अगर हमें यह मालूम होता तो हम मांडवगढ के इस बहिश्त में आग न लगाते । रूपमती । बाजबहादुर तुम्हें मुबारक हो । " सारंग स्वर "

संवादों का सब से अधिक अभिप्राय पात्रों के स्वाभाविक मनोवेगों के अनुरूप होने में है । कथावस्तु की प्रकृति से जहां मुसलमान पात्रों के संवाद का अवसर आता है वहां संवाद की भाषा सहज ही उर्दू हो जाती है । यह इस लिए हुआ है कि पात्रों में उनके स्वाभाविक कथोपकथन का रूप किसी प्रकार अस्वाभाविक न प्रतीत हो ।

शेख उमर " खामोश " जंग में फतह हासिल करने का यह अर्थ नहीं कि तुम इन्सानियत को दफन कर दो और उसकी मजार पर बदजबानी का चिराग जलाओ ।

मुसलमान पात्रों में स्वभाविकता के साथ उपस्थित करने में ही इस नाटक में उर्दू का प्रयोग का औचित्य है, इसी लिए आदम खां की महफिल में नर्तकियों द्वारा गज़ल ही गाई गई है ।

विख्यात है कि बाजबहादुर तथा रूपमती संगीत साधना को जीवन का एक आवश्यक अंग समझते थे । अधिकतर वे दिन में भोजनोपरान्त सम्मलित स्वर से रागों का आलाप करते थे । उन रागों में उन्हें सारंग स्वर विशेष प्रिय था । यह सारंग राग औडव जाति का है , तथा मध्याह्न में ही गाया जाता है । इसमें " रे " तीव्र " ग "

तथा तीव्र `ध` तथा कोमल `ग` और कोमल `नि` लगते हैं। `नि` कोमल निषाद के अन्तर्गत है। तथा `ग` अच्युत मध्यम गंधार है। इससे सारंग में एक विशेष प्रकार का सम्मोहन सा हो जाता है। अपने अन्तिम क्षणों में रानी रूपमती ने अपने गायक रायबंद से इसी राग के सुनने का आग्रह किया तथा सम्भवत: कामली निषाद के उत्तान स्वर में ही उसने प्राणोत्सर्ग किया। इस लिए समस्त संवेदना को सारंग स्वर के अन्तर्गत ही प्रस्तुत किया गया है। इसमें आदम खां तीव्र `रे` नामक चन्द तीव्र `ग` और मोहम्मद तीव्र `ध` का प्रतीक है। बाजबहादुर कोमल `म` तथा रानी रूपमती कोमल `नि` की संवेदना उपस्थित करती है। सारंग स्वर न केवल ऐतिहासिक वातावरण के अनुकूल है। प्रत्युत पात्रगत मनोविज्ञान के समानान्तर भी है।

यद्यपि बाजबहादुर और रानी रूपमती के प्रेम की कथा इतिहास में ही नहीं, साहित्य व लोक साहित्य में भी यथेष्ट प्रचलित है, तथापि लोक मर्यादा के मानसिक स्तर को उद्घाटित करने की दृष्टि से ही इस नाटक की रचना हुई है।